मेरे गुरुदेव

□ काशीप्रसाद

मेरे गुरुदेव

प्रकाशक :
श्री भवानीशंकर स्मारक ट्रस्ट
समाधि, कोंच रोड,
उरई (उ० प्र०)

प्रथम संस्करण : ५०० प्रतियाँ
जुलाई १९७८

सर्वाधिकार प्रकाशक के आधीन

मूल्य : रु० १.५०

मुद्रक :
कुमार प्रिण्टर्स
कालपी – फोन : ९

प्रकाशकीय

'मेरे गुरुदेव' सदाचार सन्देश में क्रमश: निकलता रहा। पाठकों ने उसे अत्यधिक पसंद किया। बराबर यह माँग आती रही कि इसे पुस्तकाकार करा दिया जावे तो सभी पाठकों के लिये यह अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकेगा। परिणाम स्वरुप अपने पाठकों की इच्छा का ध्यान रखते हुये उसे आज पुस्तकाकार करा दिया गया है। परम पूज्य चच्चा जी की कृपा से यह सब शीघ्रही सुलभ हो गया। यह उनकी अहेतु की दया का सुपरिणाम है।

भाई काशीप्रसाद जी को कोटिश: धन्यवाद जिन्होंने ऐसी अनूठी कृति हम सबको प्रदान की। ईश्वर से प्रार्थना है कि वे समय-समय पर अपने एवं अपने आराध्य के अनुभवों से हम सबको अवगत कराते रहें।

उनके द्वारा परमपूज्य चच्चा जी के जीवन से सम्बन्धित और कृतियाँ पाठकों के समक्ष आ सकें, इस आशा और विश्वास के साथ उनके प्रयासकी सफलता की कामना करता हूं।

– प्रकाशक

□ □

अभिमत

गुरुकी महत्ता सर्वोपरि है। इसमें किंचित भी सन्देह नहीं, गुरु तत्व परम गोपनीय एवं महान् है, भव्य और दिव्य भी, गुरु-महिमा की संतुति तो स्वयं विधाता भी नहीं कर सकते। फिर भी समय-समय पर अपनी मति के अनुसार प्रायः सभी साधकों ने जो कुछ अनुभव किया उसका निरुपण किया है। जिसके ऊपर गुरु की कृपा दृष्टि हो गई वह सनाथ हो गया, धन्य हो गया वे व्यक्ति अभागे हैं जिन्हें न तो गुरु सानिध्य ही मिला और न जिन्हें सद्गुरु की प्राप्ति ही हो सकी।

बाबू काशीप्रसाद वैयक्तिक सचिव, सहकारिता सचिवालय लखनऊ, परम पूज्य चच्चा जी के परमप्रिय शिष्य व एक पुराने सतसंगी हैं। उन पर सद्गुरु भगवान की अपार कृपा रही है। गृहस्थ धर्म का निर्वाह करते हुये वे वास्तव में एक सन्त के समान हैं, उनका सादा जीवन और रहन-सहन अनुकरणीय है, उनके पास लिखित 'मेरे गुरुदेव' एक सुन्दर और मननीय कृति है। भाषा अत्यन्त सरल, सुबोध किन्तु प्रभावशाली है।

सत्संगी एवं आध्यात्मिक जिज्ञासुओं के लिये 'मेरे गुरुदेव' उपयोगी सिद्ध होगी। ऐसा मेरा अपना विश्वास है। स्पष्ट और सशक्त अभिव्यक्ति के लिये लेखक वस्तुतः साधुवाद का पात्र है। मंगल कामना के साथ।

श्री भवानीशंकर सत्संग आश्रम —**डॉ० कृष्ण जी**
चन्द्रनगर, उरई (उ०प्र०) **एम. ए. (हिन्दी, अंग्रेजी)**

'सदाचार सन्देश' में क्रमशः 'मेरे गुरुदेव' लेख पढ़ा बहुत अच्छा लगा। भाषाकी सहजता ने तो मेरे हृदय को अत्यधिक प्रभावित किया ही साथ ही साथ स्पष्ट और कुशल अभिव्यक्ति ने भी मुझे कुछ लिखने को विवश कर ही दिया।

गुरु स्वयं में ही अत्यन्त गंभीर और गहन है उसका समझना आसान नहीं। पर वे भक्त, साधक अथवा सत्संगी धन्य हैं जिन्होंने उस गुह्य तत्व का मर्म जानकर आत्म सात किया और उसे सर्वसाधारण के लिये सुलभ करने का प्रयास किया। इस सम्बन्ध में बाबू काशीप्रसाद लखनऊ का प्रयास निश्चय ही सराहनीय कहा जायेगा। उन्होंने सरल वाणी में गुरु महिमा का निरूपण करके सभी शास्त्रों का निचोड़ पाठकों के समक्ष रख दिया है।

परमपूज्य सदगुरु महाराज प्रातः स्मरणीय संत श्री भवानीशंकर जी के जीवन की झाँकी प्राप्तकर साधारण मानव को एक नवीन दिशा मिलेगी जिसके आलोक में संसार में लिप्त प्राणी ज्ञान प्राप्त करके आध्यात्मिक मार्ग पर निर्भीक रूप से अग्रसर हो सकेंगे। इसका पुस्तकाकार रूप अधिक उपयोगी सिद्ध होगा।

—जमुनाप्रसाद, मथुरा

ब्रह्मलीन सन्त परम पूज्य चच्चा जी
श्री भवानीशंकर

मेरे गुरुदेव

☐ बाबू श्री काशीप्रसाद जी लखनऊ (उ. प्र.)

: ॐ :

सब धरती कागद करों, लेखनि करों बनराज।
सात समुद्र की मसि करों, गुरु गुण लिखा न जाय॥

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु, गुरुर्देवो महेश्वराः।
गुरुर्साक्षात परब्रह्मा, तस्मै श्री गुरुवे नमः॥

हे परमपिता परमात्मा सत्गुरुदेव चच्चा जी आपकी महिमा अपरम्पार है। आपके चरित्र का वर्णन करने में विज्ञ भी मूढ़ हो जाते हैं, वाणी भी स्तब्ध हो जाती है तो मेरे जैसा तुच्छ पामर आपके चरित्रों का वर्णन कैसे कर सकता है? फिर भी हे चच्चा जी! आपका जो भी स्वरूप हो उसके चरण-रज की बन्दना करते हुए टूटी-फूटी वाणी में कुछ शब्द प्रकट करने का साहस कर रहा हूं। यह कार्य करने में कितना कठिन है इसका मनन न करते हुए मेरे मन ने अवश्य ढिठाई की है और नहीं तो सूर्य के सामने जुगनू की क्या बिसात है? मुझ सरीखे अज्ञानी का इस कार्य में प्रवृत्त होना वैसा ही है जैसा किसी टिटहरी का अपनी चोंच की सहायता से समुद्र को नापने का प्रयास। बस एक ही आधार ऐसा है जिसकी सहायता से मैं यह साहस कर रहा हूं वह यह कि परम पूज्य चच्चा जी मेरे अनुकूल हैं। हे गुरुदेव यदि आपकी प्रेम पूर्ण वाणी किसी गूंगे पर भी कृपा करे तो वह भी बृहस्पति के साथ स्पर्धा कर सकता है। केवल यही नहीं, जिस किसी पर आपकी दृष्टि का प्रकाश पड़ जाता है अथवा आपका कोमल हाथ जिसके मस्तक पर जा पड़ता है वह जीव होने पर भी शिव की बराबरी कर सकता है। जिसके कार्यों का ऐसा महात्म्य है, उसका मैं मर्यादित वाणी के बल से भला कैसे वर्णन कर सकता हूं। क्या कभी कोई सूर्य के शरीर में उबटन लगा सकता है? फूलों से भला कल्पवृक्ष का शृंगार किया जा सकता है? ठीक इसी प्रकार श्री गुरुदेव चच्चा जी के महात्म्य का पूरा-पूरा आकलन करने की किसमें सामर्थ्य हो सकती है? इसका वर्णन करना खरे-सोने पर चांदी का मुलम्मा करने के समान ही होगा। इसलिए कुछ भी न कहकर चुपचाप गुरुदेव के चरणों पर मस्तक रख

देना ही सबसे अच्छा है । वह स्वयं ही अपने चरित्र के वर्णन करने में समर्थ हैं । फिर भी आप सबको गुरुदेव के रूप में ही देखते हुए, आप सबकी आज्ञा गुरुदेव की आज्ञा समझते हुए कुछ विचार प्रकट कर रहा हूं । हालाकि मैं समझता हूं कि आप जैसे बुद्धजीवियों के सामने मेरा यह साहस सूर्य को दीपक दिखाने के समान ही होगा ।

सन् १९४२ में मैं झांसी कलक्टरी में पेड ऐप्रेन्टिस के रूप में २१ रु० माहवार पर काम करता था । उस समय मेरे पूज्य पिता जी भी रिटायर हो गए थे । मेरे परिवार में मेरे पिताजी, माता जी, तीन बहनें, मैं स्वय, मेरी पत्नी व एक पुत्री, मेरे बड़े भाई, भाभी जी व एक पुत्र तथा मेरा छोटा भाई थे । इस प्रकार १२ आदमियों का परिवार का भार मेरे ऊपर था । मैं आर्थिक व मानसिक चिन्ताओं के कारण व्यथित व दुखी रहता था । ऐसे समय में मेरे पूर्वजों की तपस्या तथा आशीर्वाद, जन्म-जन्मान्तरों के मेरे सत्कर्मों का फल, उस समय के मेरे इष्टदेव हनुमान जी की कृपा के फलस्वरूप मेरे जीवन में वह अमूल्य दिन आया कि पूज्य चच्चा जी ने इस तुच्छ दास को अपनाया था । उस समय पूज्य गुरुमाता भी साकार रूप में उपस्थित थी । उनके आशीर्वाद का मैं आखिरी पौदा हूं क्योंकि उसके तीन चार माह बाद ही वह चच्चा जी में लीन हो गई थीं । पूज्य चच्चा जी की शरण मुझे १९४३ में प्राप्त होने का सौभाग्य हुआ था । १९४३ से ३० जुलाई १९७३ तक साकार रूप में उनके दिव्य प्रकाश द्वारा मेरा मार्ग दर्शन होता रहा है । वह शुभ दिन ऐसा था जैसा कि चच्चा जी ने अपनी पुस्तक "गृहचर्या में नर नारी सहयोग" में लिखा है कि कृपा चार प्रकार की होती है:-(१) निज कृपा, (२) ईश कृपा, (३) सन्त कृपा, (४) सत्गुरु कृपा । ये चारों कृपायें एकत्रित होकर मेरे जीवन को सार्थक बनाने में सहायक सिद्ध हुई । अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों पदार्थ चच्चा जी के चरणों में प्राप्त हुए । जैसा कि कबीरदास जी ने लिखा है:-

तीरथ गए ते एक फल, सन्त मिले फल चार ।
सत्गुरु मिले अनन्त फल, कहत कबीर विचार ॥

जिस पुरुष को इसी जन्म में सत्गुरु का पावन संग मिल गया और जिसे उनकी चरण-धूलि को मस्तक पर चढ़ाने और उनकी चरण-सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हो गया उससे बढ़कर सुखी और शान्ति का अधिकारी कौन होगा ?

महान तपस्या व कठोर परिश्रम के फलस्वरूप ही सत्गुरु की प्राप्ति होती है । स्वयं चच्चा जी को गुरु की प्राप्ति के लिए कई महीनों तक बनों, जंगलों तथा पहाड़ों व तीर्थों में मारे-मारे फिरना पड़ा था । हम लोगों का सौभाग्य था कि बिना किसी परिश्रम के ही हमें उनकी प्राप्ति हुई ।

परम पूज्य चच्चा जी ने सत्गुरु की महानता व उनकी प्राप्ति के बारे में निम्नलिखित वाणी अपनी पुस्तक "गृह चर्या में नर नारी सहयोग में" में व्यक्त की है:-

(१) भवसागर से पार होने के लिए सद्गुरु की आवश्यकता है । सद्गुरु के परामर्श और आध्यात्मिक प्रकाश द्वारा साधक अपने परम लक्ष्य तक पहुंचने में समर्थ होता है ।

(२) बाहर के गुरु अनेक विषयों पर उपदेश देते हैं परन्तु सद्गुरु अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाता है ।

(३) बाहर के गुरुओं का ज्ञान बाहरी वस्तुओं तक सीमित रहता है । उनके उपदेश से शंका उत्पन्न होने पर यथार्थ समाधान होना सम्भव नहीं है ।

(४) सद्गुरु का वास हमारे अन्तःकरण में सगुण रूप से विराजमान रहता है । उनके प्रकाश से काम, क्रोध, मोह, लोभ रूपी अन्धकार उसी तरह से अन्तःकरण से भाग जाते हैं जैसे दिन के प्रकाश में चमगादड़ व उल्लू भाग जाते हैं ।

(५) जिज्ञासु, साधु, संत तो पहचान में आ भी जाते हैं किन्तु सद्गुरु की पहचान ऐसी है कि वह परख में नहीं आते ।

(६) सद्गुरु की कोई भेषभूषा नहीं होती । वह जन साधारण की भाँति रहते हैं । बाहर से ऐसा प्रतीत होता है कि मानो संसार में फँसे हुए हैं परन्तु वह कर्तव्य पालन इस प्रकार से करता है जैसे कि कमल के पत्ते पर पानी का प्रभाव नहीं पड़ता ।

(७) सद्गुरु कोई चमत्कार नहीं दिखाता है । संसार के मनुष्य यदि उनके सामने सांसारिक इच्छायें रखते हैं तो वह उनकी इच्छाओं को पूरी करने के बजाय उन इच्छाओं को अपने आत्मबल द्वारा जड़मूल से नष्ट कर देता है ।

(८) कोई भी व्यक्ति किसी भी आपत्ति और मुसीबत में अपना दुखड़ा रोता है तो सद्गुरु उसको इतना आत्मबल दे देता है कि वह अपने प्रारब्ध कर्मों को आसानी से भोगते हुए ईश्वरीय मार्ग से विचलित न होने पावे ।

(९) सद्गुरु का कार्य संसार से निकालने का है न कि उसको संसार में फँसाने का ।

(१०) कर्म और उसके फल का सिद्धांत अटल है । उसी के अनुसार प्रारब्ध बनता है कि जिसको भोगने के लिये मनुष्य जन्म लेकर आता है । सद्गुरु का काम आसानी से भोग चुकता करा देने का है, ब्याज पर ब्याज चढ़ाने का नहीं है ।

(११) सद्गुरु कृपा यह है कि वह जिज्ञासु के हृदय के अन्धकार को दूर करके जैसा वह स्वयं है वैसा ही उसको बना देता है ।

(१२) जीवन के ध्येय को प्राप्त करने के लिए सद्गुरु की प्राप्ति अनिवार्य है ।

(१३) कहा गया है कि गुरु कीजिए जान और पानी पीजिये छान । साधारण तौर पर गुरु की पहचान जिज्ञासु के जांच में आना असम्भव नहीं तो बहुत कठिन अवश्य है ।

(१४) बाहरी तौर पर गुरु की पहचान के लिए यह हो सकता है कि जो व्यक्ति जहाँ पर पैदा हुआ है, जहाँ पर उसने विद्या पायी है, अपने जीवन में उसने जो भी पेशा किया है, उन सब अवस्थाओं में उनके सदाचार व ईमानदारी में लोगों ने उसकी किस हद तक आलोचना और प्रशंसा की है ।

(१५) जिसमें स्वार्थ न हो, अहंकार न हो, जो प्रेमी हो, परोपकारी हो, सदाचारी हो और साथ ही साथ ईश्वर भक्त भी हो । यदि ऐसा व्यक्ति संत कृपा से मिल जावे तो उसी को अपने आप को समर्पण कर देना चाहिए ।

(१६) शास्त्रों और धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन में चाहे जीवन व्यतीत कर दिया जाय, परन्तु परम तत्व की प्राप्ति बिना सद्गुरु की कृपा से कदापि सम्भव नहीं ।

(१७) माता-पिता जन्म देने के कारण पूजनीय हैं । विद्या गुरु विद्या देने के कारण पूजनीय है । और भी जितने गुरुजनों से हमें शिक्षा मिलती है वे सब पूजनीय हैं परन्तु सद्गुरु स्वयं ही शिष्य की पूजा अपनी अन्तरात्मा से उसी प्रकार करता है जिस प्रकार से भक्त भगवान की पूजा करता । सद्गुरु की प्रशंसा के लिये ढूंढने से भी शब्द नहीं मिलते ।

(१८) सद्गुरु श्री भगवान की भक्ति को चारों तरफ से लुटाते रहते हैं । वे पात्र, सुपात्र नहीं देखते । उन्हीं के प्रताप से संसार टिका हुआ है ।

पूज्य चच्चाजी स्वयं कहा करते थे कि नर शरीर व सत्गुरु की प्राप्ति ईश्वर की महान कृपा से मिलती है । उसकी पुष्टि रामायण की इन चौपाइयों से जो वह कहा करते थे, होती है—

आकर चार लाख चौरासी, योनि भ्रमत यह जिव अविनाशी ।
फिरत सदा माया कर प्रेरा, काल कर्म स्वभाव गुण घेरा ।
कबहुक कर करुणा नर देही, देत ईश बिन हेतु सनेही ।
नर-तन भव-वारिध कह बेरो, सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो ।
कर्णधार सत्गुरु दृढ़ नावा, दुर्लभ साज सुलभ कर पावा ।

जो न तरे भव सागर, नर समाज अस पाय ।
सो कृत निन्दक मन्द मति, आतम हनि गत पाय ॥

इस प्रकार का साधन व सत्संग प्राप्त करके भी जो इस संसार को पार नहीं करता वह आत्म हत्या करने वाले की गति को प्राप्त होता है ।

इस प्रकार तीर्थों का फल, संतों का सत्संग व सत्गुरु की प्राप्ति पूज्य चच्चाजी के प्राप्त होने पर हुई जो कि जीवन का परम लक्ष्य है । सभी धर्मों, सम्प्रदायों, ऋषि, मुनियों ने सत्गुरु की प्राप्ति को ही ब्रह्म की प्राप्ति अथवा उसका साधन बताया है । रामायण में श्री रामजी ने गुरु की महत्ता को सर्वश्रेष्ठ कहा है । गीता में श्री कृष्ण जी ने कहा है कि संत व सत्गुरु मेरे ही रूप हैं और उनके चरणों की धूलि को मैं स्वयं अपने मस्तक पर लगाता हूं । निराकार रूप की साधना, देवी, देवताओं अथवा पाषाण मूर्तियों की आराधना करने में बड़े विघ्न व बाधाओं का सामना करना पड़ता है, घोर तपस्या व कठिन परिश्रम करने पर भी शांति नहीं मिलती लेकिन चैतन्य रूप सत्गुरु की साक्षात् सेवा के फलस्वरूप उनकी कृपा से क्षणमात्र में ही जीवत्व को शिवत्व प्राप्त हो जाता है । संत व सत्गुरु प्रकाशमान दीपक की तरह होते हैं । जैसे एक प्रज्वलित दीपक से दूसरा दीपक भी प्रज्वलित होकर उसी भाँति देदीप्यमान हो जाता है उसी भाँति सत्गुरु भी अपने शिष्य के हृदय को दिव्य प्रकाश देकर उसको अपने ही रूप में परिवर्तित कर देते हैं ।

पूज्य चच्चा जी का जीवन सरल, सादा, सत्य व प्रेमपूर्ण रहा । उदारता व परोपकार उनके जीवन का मुख्य ध्येय रहा । स्वयं कष्ट सहकर दूसरों की मदद करना ही उनका स्वभाव था । सत्यता व ईमानदारी उनके आभूषण थे । कोई भी सत्संगी, रिश्तेदार, अथवा अन्य व्यक्ति किसी भी प्रकार की उन्हें भेंट देने का साहस नहीं कर सकता था और न वह इस प्रकार की चीजों को स्वीकार ही करते थे । प्रसाद के रूप में भी वह आटे की पंजीरी स्वीकार करते थे । चच्चाजी में पिता तुल्य दया व कृपा, माता के समान प्रेम, बंधु-बाँधवों की भाँति सहृदयता, पापियों के लिए पतितपावनता व भक्तों व प्रेमियों के लिए परब्रह्म परमात्मा के भाव प्रदर्शित होते थे । कहने का तात्पर्य यह है कि जिस किसी ने उनको जिस भाव से देखा उसी रूप में वह उसको भासित होते रहे:-

"जिनकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी ।"

पूज्य गुरुदेव के सम्पर्क में जो भी व्यक्ति आया वह यही कहता था कि चच्चा जी मुझसे अधिक किसी को नहीं चाहते । प्रेम की पराकाष्ठा का कैसा अद्भुत दृश्य उनके स्वरूप से छिटकता था वह अवर्णनीय है । उनकी मृदुल मुस्कान, उनकी मधुर वाणी, प्रेमपूर्ण दृष्टि तथा दिव्य प्रकाश से भरा सत्संग का स्मरण होते ही हृदय में आनन्द, शरीर में रोमांच व नेत्रों में प्रेमाश्रु उमड़ पड़ते हैं:-

यह दर्द, ये आँसू, ये तड़प और ये आहें ।
किस मुँह से कहें, इश्क में आराम नहीं है ॥-

परम पूज्य गुरुदेव चच्चा जी की आध्यात्मिक साधना का मार्ग "प्रेम मार्ग" है। उनकी यह साधना कितनी सरल, सत्य व महान है इसका अनुभव साधक लोग स्वयं करते होंगें। इसकी महानता के बारे में पूज्य चच्चाजी का कहना था कि जहाँ ईश्वर प्राप्ति के और सारे साधन खत्म हो जाते हैं वहाँ से हमारी साधना आरम्भ होती है। उनकी साधना में किसी प्रकार का बन्धन नहीं है सभी मत के अनुयायी इसका अभ्यास करके परम लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं। कैसा भी, किसी भी वर्ण का, दुराचारी, पापात्मा भी उनके अभ्यास पर चलकर शुद्धात्मा बन सकता है। इस सम्बन्ध में एक बड़ा रोचक प्रसंग है : एक बड़ा डाकू एक ग्राम में डाका डालने गया। जिस घर में उसने डाका डाला उस घर की महिला परम पूज्य चच्चा जी के सत्संग में थी। जब वह डाकू उस घर में डाका डालने गया तो वह महिला जाग उठी। उस महिला ने डाकू को देखकर कोई और अस्त्र शस्त्र पास न होने के कारण पूज्य चच्चा जी की फोटो को उस डाकू के सिर पर उठाकर फेंकी। वह फोटो उस डाकू के मस्तक पर लगी और उसका काँच टुकड़े-टुकड़े होकर फोटो जमीन पर गिर गई। डाकू के सिर में चोट लगी और उसने भूमि पर पड़ी हुई उस फोटो के देखा। फोटो को देखते ही उसकी वृत्ति बदल गई और वह डाकू उस फोटो को लेकर चच्चा जी का पता लगाते लगाते उनके पास आया और उनका आशीर्वाद प्राप्त कर अपने जीवन को सार्थक बनाया। पूज्य चच्चा जी कभी किसी से भी कोई आदत भली या बुरी छोड़ने को नहीं कहते थे। उनका कहना था कि यह सारी चीजें अपने आप अभ्यास, गुरु कृपा व सत्संग द्वारा ऐसे खत्म हो जाती हैं जैसे सूर्य के उदय होने पर अन्धकार नष्ट हो जाता है तथा मन के सारे विकार खत्म होकर वह निर्मल जल की भाँति शांत होकर ब्रह्म की आत्मवयता को प्राप्त हो जाता है। पूज्य चच्चा जी ने अपनी पुस्तक में लिखा है, "जिस तरह उपाय करने पर लकड़ी से अग्नि और दूध से घी निकलता है उसी प्रकार सत्संग, सन्तों की कृपा तथा अभ्यास व साधन से आत्मपद तथा ईश्वर भक्ति की प्राप्ति होती है। उन्होंने लिखा है कि "सत्संग से बढ़कर मनुष्य के कल्याण के लिए कोई उत्तम वस्तु नहीं है। सत्संग से ज्ञान होने पर माया दुखदायी के बदले सुखदायी हो जाती है। भगवान के भक्त माया के अधीन नहीं होते किन्तु माया स्वयं उनके सामने सेवा करने के लिए हाथ जोड़े खड़ी रहती है परन्तु श्री भगवान के भक्तों को उसकी ओर देखने का अवकाश ही नहीं मिलता। पूज्य चच्चा जी धार्मिक साहित्य व ग्रन्थ आदि पढ़ने को कभी नहीं कहते थे। उन्होंने लिखा है कि सत्संग किए बिना केवल ग्रन्थ अवलोकन द्वारा अभ्यास करने से सब साधन व्यर्थ हो जाते हैं। इसलिए ज्ञान और भक्ति प्राप्त करने के लिए अनुभवी महात्माओं के पास सत्संग अवश्य करना चाहिये। पूज्य चच्चा जी के अभ्यास व साधना की स्थिति कबीरदास जी के निम्न पदो से स्पष्ट रूप में प्रकट होती है। इस पद को पूज्य चच्चा जी झाँसी में श्री रघुनाथ प्रसाद भार्गव जी से अक्सर सुना करते थे:—

"साधो सहज समाधि भली,
गुरु प्रताप जा दिन ते जागी दिन-दिन अधिक चली।
जँह तँह डोलो सो परिक्रमा, जो कछु करों सो सेवा।
जब सोवों तब करों दन्डवत, पूजों और न देवा॥
कहाँ सो नाम सुनो सो सुमरन खांव पियों सो पूजा।
गृह उजाड़ एक सम लेखों, भाव मिटावों दूजा॥
आँख न मूदों कान न रूदों, तनिक कष्ट नहि धारों।
खुले नैनन पहिचानों हँस हँस, सुन्दर रूप निहारों॥
शब्द निरन्तर मे मन लागो मलिन वासना त्यागी,
ऊठत बैठत कबहँ न छूटे, ऐसी तारी लागी॥
कहें कबीर यह उन मुन रहनी सो परगट में गाई,
सुख दुख से कोई पर परम पद, सोई पद रहा समाई॥

गीता में श्री कृष्ण जी ने कर्मयोगियों के जो लक्षण बताए हैं उनसे कहीं अधिक पूज्य चच्चा जी में विद्यमान थे। गृहस्थ आश्रम में रहकर तमाम कठिनाइयों का सामना करते हुए अपने कर्तव्य पालन का सत्यता से निर्वाह करते हुए उनका जीवन कमल के पत्ते के समान निर्लिप्त था। वह सर्वशक्तिमान होते हुए भी कभी चमत्कार दिखाने में विश्वास नहीं करते थे। दयालु स्वभाव के कारण कभी किसी के दुख का उन्होंने अपनी कृपा से निवारण किया तो वह उसका कोई अन्य कारण ही बता कर उस व्यक्ति को सन्तुष्ट कर दिया करते थे। चच्चा जी के जीवन से सम्बन्धित इसमें एक और प्रसंग इस प्रकार है:- एक मुसलमान फकीर चच्चा जी के भक्तों में से थे। वह पूज्य चच्चा जी के पास आये। चच्चा जी ने उनसे कहा "मौलाना तुम गंडे तावीज बनाना शुरू करो उससे लोगों को फायदा होगा। उस फकीर ने कहा चच्चा जी मैं कुछ नहीं जानता आपको ही जानता हूं। चच्चा जी ने कहा तुम शुरू करो सब हो जायेगा। उस फकीर ने गंडे तावीज लोगों को देना शुरू कर दिया। उससे लोगों को फायदा होना शुरू हो गया और उस फकीर की बड़ी ख्याति हो गई। एक दिन चच्चा जी ने एक दुखी आदमी को अपने एक निजी व्यक्ति द्वारा मौलाना के पास भेजा कि जाओ इनको मौलाना से तावीज दिला दो। इनका कष्ट दूर हो जायेगा। वह सत्संगी उस व्यक्ति को मौलाना के पास ले गए और कहा कि चच्चा जी ने इनको आपके पास तावीज देने को भेजा है। मौलाना ने तावीज दिया और उस आदमी को आराम हुआ। जो व्यक्ति चच्चाजी के कहने से उसको लेकर गए थे वह मौलाना से कहने लगे-'मौलाना साहब, आपके तावीज से बड़ी जल्दी फायदा हो जाता है मुझे भी बतायें कि आप यह तावीज किस प्रकार बनाते हैं।" मौलाना ने माथा ठोका और कहा:-"आप पूज्य चच्चा जी के इतने घनिष्ठ हैं फिर भी आप उनकी महिमा को नहीं जानते। खुदा कसम

मैं इसमें कुछ भी नहीं करता हूं। तावीज में मैं सिर्फ चच्चा जी का नाम ही लिख देता हूं। यह लिखकर ही दे दे देता हूं कि 'बहुकुम जनाब [1] श्री भवानीशंकर जी'। उन्हीं के नाम से लोगों को फायदा हो जाता है।"

पूज्य चच्चाजी के सम्मुख जाने से ही मनुष्य की समस्याओं का समाधान आप से आप हो जाता था और वह परम शांति का अनुभव करता था। अहंभाव को उन्होंने कभी अपने पास फटकने भी नहीं दिया। उनकी वेश-भूषा बिल्कुल सादी थी। धोती, कुर्ता ही वह हमेशा पहनते थे। आरम्भ में वह किसी को चरण-स्पर्श भी नहीं करने देते थे। स्वयं को उन्होंने इतना गुप्त व संसार में लिप्त रक्खा कि कोई भी उनकी महानता को नहीं समझ सका। उनका स्वरूप इतना विराट था की आर्त व दीन होकर चच्चा जी के स्मरण मात्र से ही कठिन से कठिन विपत्तियों में, दुख दर्द बीमारी, जन्म मृत्यु,-शादी आदि में उनसे इस प्रकार सहायता प्राप्त होती रही जिस प्रकार द्रोपदी चीर-हरण के समय उसकी पुकार पर भगवान कृष्ण ने सहायता की थी अथवा गज की करुण पुकार सुनकर भगवान स्वयं नंगे पैर सहायता के लिए दौड़े थे। वैसे पूज्य चच्चा जी हर समय जिस प्रकार माता पिता अपने छोटे-छोटे बालकों की देखभाल करते हैं उसी भाँति रक्षा करते रहते थे परन्तु मैं अपना स्वय का एक अनुभव आप लोगों के समक्ष प्रस्तुत करता हूँ जो कि मेरी जिन्दगी में अविस्मरणीय रहेगा। लगभग १९५१ की बात है। उस समय इलाहाबाद में प्रथम कुम्भ मेले का आयोजन हुआ था। मैं उस समय लखनऊ में था। पूज्य भाई साहब कृष्णदयाल जी (पूज्य चच्चा जी के सुपुत्र) जो उस समय इलाहाबाद में ही थे, का पत्र मेरे पास आया कि चच्चा जी कुम्भ मेले के अवसर पर इलाहाबाद आ रहे हैं। मेरी इच्छा भी पूज्य चच्चा जी के दर्शनों की हुई। कुम्भ मेला की इतनी उत्सुकता नहीं थी। मैंने अपना कार्यक्रम इलाहाबाद जाने का बनाया। मेरे साथ पड़ोस की ३,४ महिलायें भी व मेरे परिवार के लोग जाने को तैयार हुए। इस प्रकार लगभग १२ व्यक्ति जिसमें सभी महिलायें व बच्चे थे सिर्फ मैं व मेरा छोटा भाई पुरुष थे। हम लोग निश्चित समय पर लखनऊ स्टेशन पहुँचे। उस समय लाखों व्यक्तियों की भीड़ स्टेशन पर कुम्भ जाने के लिये तैयार थी। स्पेशल रेलगाड़ियां हर घन्टे लखनऊ से इलाहाबाद जाती थीं। जाड़े का मौसम था इसलिए सामान भी काफी था। स्टेशन पर कुली आदि भी नहीं मिलते थे। किसी प्रकार सामान को लेकर हम लोग प्लेटफार्म पर पहुँचे। गाड़ी के आते ही लोगों की भीड़ उसमें घुस गई। मैंने किसी प्रकार महिलाओं और बच्चों को जनानी डिब्बे में बिठाया परन्तु कुछ सामान व मैं स्वयं ट्रेन के अन्दर न जा सके। इतने में ही गाड़ी चल दी। उस समय की व्यथित स्थिति का वर्णन करने में मैं असमर्थ हूँ। सब महिलाओं व बच्चों की मृत्यु का चित्र मेरे सामने नाचने लगा और मैं व्यथित अवस्था में रोता हुआ प्लेटफार्म पर बैठकर पूज्य चच्चा जी का स्मरण करने लगा। पाँच मिनट तक मेरी हालत बेहोशी की रही।

[1] पूज्य चच्चा जी का नाम 'भवानीशंकर जी' था।

इसके पश्चात् आँख खोलने पर मैंने देखा कि वही ट्रेन कुछ दूर जाकर फिर वापिस आ रही है। मेरी जान में जान आई। आँसू पोंछते हुए मैंने चच्चा जी को धन्यवाद दिया और ट्रेन आने पर बाहर ही उसके डण्डे पकड़ कर लटक गया। कुछ स्टेशन निकलने के बाद मैं अन्दर घुसकर रात भर ट्रेन के पैखाने में बैठा रहा। १० घन्टे की कठिन यात्रा के बाद प्रयाग स्टेशन पर गाड़ी पहुँची। उस समय प्रातः ५ बजे का समय था। सब लोगों को उतारा। प्रयाग पहुँचने पर सब लोगों की इच्छा हुई कि ५ बजे प्रातः का समय प्रयाग में कुम्भ स्नान के लिए महान शुभ होगा। परन्तु मैंने उन सबसे कहा कि मैं यहाँ पूज्य चच्चा जी के दर्शनों के लिए आया हूँ उनकी कृपा से हम सब लोगों की जान बच गई है इसलिये मैं पहले चच्चा जी के दर्शन करूँगा इसके बाद कुम्भ की बात सोची जायेगी। स्टेशन पर कुली व सवारी मिलना कठिन था। किसी प्रकार सारा सामान लेकर सब लोगों सहित मैं प्रयाग स्टेशन से पुराना कटरा जहाँ चच्चा जी ठहरे थे चल दिया। मैंने मकान देखा नहीं था। हम लोग कटरा पहुँच कर बाजार में ही बैठ गये। सौभाग्य से भाई साहब कृष्णदयाल जी भी वहां आ पहुँचे। उनके साथ मैं घर पहुँचा। पूज्य चच्चा जी के चरण स्पर्श किए। मेरे बगैर कुछ कहे ही उन्होंने कहा "काशीप्रसाद तुमको इस प्रकार का खतरा मोल नहीं लेना चाहिये था।" मैं सिर्फ कुछ प्रेमाश्रु ही भेंट कर सका। इस घटना से सिद्ध होता है कि वह किस प्रकार से हर क्षण रक्षा किया करते थे। हम सब लोगों की मृत्यु उस अवसर पर सिर पर मंडरा रही थी। यदि यह सब लोग अकेले ही प्रयाग पहुँचते तो पता नही वहां पहुँच कर उन सबका क्या हाल होता। दूसरे यदि मैं उन सबकी बात मानकर ५ बजे प्रातः संगम स्नान करने को तैयार हो जाता तो वह समय वही था जिस वक्त कि प्रयाग में संगम स्नान के समय हजारों आदमियों की डूबकर मृत्यु हुई थी। परन्तु मारने वाले से बचाने वाला बड़ा होता है। इसी अवसर पर पूज्य चच्चा जी ने कहा था कि सत्गुरु का सत्संग ही तीर्थराज 'प्रयाग' है। यह चौपाई उन्होंने पढ़ी थी :—

"मुदमंगल मय संत समाजू, जो जग जंगम तीरथ राजू"

जिस तीर्थराज में रामभक्ति रूपी सुरसरि की निर्मल धारा, ब्रह्म विचार रूपी सरस्वती और कर्मकाण्ड रूपी यमुना की धारायें मिल कर त्रिवेणी की अद्भुत छटा दिखलाती हैं उसके समान संसार में और कोई संगम नहीं है। हमारे बहुत से सत्संगी भाइयों द्वारा यह कहते सुना गया है कि उनकी विपत्तियों में स्वयं चच्चाजी ने दर्शन देकर उनका कष्ट निवारण किया। मेरी पूज्य माता जी कहा करती थीं कि उन्हें ऐसा प्रतीत होता था कि चच्चा जी उनके साथ चल रहे हैं। मेरे छोटे भाई का जीवन बनाने में उनका ही श्रेय था। वह अधिक पढ़ा लिखा नहीं था। परन्तु उनकी नौकरी की परीक्षा के समय वह बतलाता है कि कोई अज्ञात व्यक्ति स्वयं आकर उसके पर्चों का हल करा गया उसके पश्चात् उनके दर्शन उसको कभी नहीं हुए। पूज्य चच्चा जी

आध्यात्मिक बातों को न पूंछ कर पारिवारिक स्थिति की ही जानकारी किया करते थे और अपने दिव्य प्रकाश से सबको सांत्वना व शांति प्रदान करते रहते थे। उनका स्वरूप समदर्शी था। वह कभी किसी की बुराइयों को कुकर्मों को तथा पापों को नहीं देखते थे और न सुनते थे। अपनी पुस्तक में उन्होंने लिखा है–"जब कोई किसी की निन्दा कर रहा हो तो उसे मत सुनो। वहां से चल देना ही उस समय सबसे अच्छा है। अगर निन्दा के शब्द कान में पड़ ही जायें तो उनका स्वाद न लेकर उसी समय दृढ़ता से मन में कहो कि यह सत्य नहीं है और मन से ऐसा कहना उस समय तक जारी रक्खो जब तक वह शब्द तुम्हारे कान द्वारा निकल न जावें। अगर ऐसा प्रयश्चित न करोगे तो वह निन्दा के शब्द छूत की बीमारी की तरह तुम्हारे सारे शरीर में फैलकर असाध्य रोग पैदा कर देंगे।" पूज्य चच्चा जी का कहना था कि उनका काम तो धोबी और मेहतरों का है। वह सबके मन के मैलों और पापों को धोते और साफ करते रहते थे। इन सब बातों का मनन करने से यह सिद्ध होता है कि पूज्य चच्चाजी पूर्ण परब्रह्म की स्थिति में थे। एक अनुभव इसका मैं आप लोगों के समक्ष प्रस्तुत करता हूं। सन् १९५२ में चच्चाजी लखनऊ पहुँचे थे। मेरे घर पर ठहरे। उन्होंने कहा:–"काशीप्रसाद यहां से अयोध्या जी पास हैं वहां चला जाय।" मैंने सहर्ष उनकी आज्ञा शिरोधार्य की। चच्चा जी सहित हम लोग अयोध्या जी पहुँचे। हमारे साथ पंडित महावीरप्रसाद मिश्र व सम्भवतः भाई कृष्णदयाल जी भी थे। उस समय मैं हनुमान जी पर अधिक विश्वास करता था और हर शनिवार को मंदिर जाकर प्रसाद चढ़ाया करता था। सौभाग्यवश अयोध्या जी में भी शनिवार पड़ गया। मेरे मन में विचार आया कि अयोध्या जी में हनुमान गढ़ी पर प्रसाद चढ़ाया जाय। ऐसा शुभ अवसर कब मिलेगा। यह सोचकर मैंने प्रसाद मंगा लिया। प्रसाद मंगा लेने के बाद मेरे मन में यह अन्तर्द्वन्द्व पैदा हुआ कि पूज्य चच्चाजी भी मौजूद हैं उनके होते हुए हनुमान जी को प्रसाद चढ़ाना चच्चाजी का अपमान होगा। मैं इस उलझन में कमरे में बैठा हुआ था। इतने में मैंने देखा कि कमरे में लाल प्रकाश हुआ और एक विशालकाय बन्दर आकर मेरे सामने रक्खे हुए प्रसाद में से कुछ भाग उठाकर ले गया। मेरी आँखें खुली और यह देखकर कि हनुमान जी ने स्वयं आकर प्रसाद ग्रहण किया है तथा पूज्य चच्चा जी की उपस्थिति को देखकर उनका स्वयं आना उनका चच्चाजी के प्रति आदर प्रदर्शित करना था। उसी समय से मैंने हनुमान जी से विदा मांग ली और चच्चा जी प्रति के श्रद्धा उमड़ आई। वह दृश्य कभी भुलाया नहीं जा सकता। उस रात्रि पूज्य चच्चा जी ने जो प्रेम की वर्षा की थी उसका वर्णन करना सम्भव नहीं है मानो वह मेरी परीक्षा ही ले रहे थे। वह मुझे अकेले सरयू नदी के किनारे ले गए और अपने दिव्य प्रकाश द्वारा सत्संग कराया तथा मेरा हाथ थामकर मुझे अभयदान प्रदान किया। उस अलौकिक दृश्य को कभी भुलाया नहीं जा सकता और ऐसा प्रतीत होता है कि हमेशा के लिए उन्होंने मेरा हाथ थाम लिया। इस प्रकार की अनेक कृपा इस तुच्छ दास पर उन्होंने की तथा तुरीय अवस्था तक

उन्होंने पहुँचाया जिसकी प्राप्ति कठिन साधन व तपस्या से भी सम्भव नहीं होती।

परमपूज्य गुरुदेव चच्चा जी की साधना के चार मुख्य लक्ष्य थे जो इसप्रकार हैं:–

१–सदाचार

सदाचार के सम्बन्ध में परम पूज्य चच्चा जी ने अपनी पुस्तक "गृहचर्या में नर नारी सहयोग" लिख कर साधकों को कृतार्थ किया है। इसमें रामायण, गीता के उपदेशों का सार तथा उनके स्वयं के अनुभवों का दिग्दर्शन कराया गया है। इस पुस्तक के अध्ययन मात्र से स्वयं चच्चा जी ने लिखा है कि पाठकों को जो लाभ होगा वह अभूतपूर्व होगा। यह पुस्तक जीवन की सफलता की कुन्जी है तथा इसके अनुसार यदि कोई अपने जीवन को ढाल सके उसके लिए कोई साधन व अभ्यास की आवश्यकता नहीं है और वह इसके अनुसार चलकर ही परब्रह्म की स्थिति को सहज में प्राप्त कर सकता है। सभी के हृदय के अन्दर ईश्वर विराजमान है अथवा प्रत्येक जीव ब्रह्म का ही अंश है। भगवान राम, कृष्ण व महात्मा गाँधी अपने आदर्श चरित्र के कारण ही इतने प्रसिद्ध हुए। सदाचारी पुरुष को कोई तप या साधन करने की आवश्यकता नहीं होती। वह कर्मयोग द्वारा ही ब्रह्म की आत्मीयता को प्राप्त कर लेते हैं। सदाचारिता से मनुष्य में सभी ईश्वरीय गुण, सुख, सन्तोष, वैराग्य, विवेक, प्रेम, सत्य व अहिंसा स्वतः ही आ जाते हैं और वह ब्रह्मानन्द की अनुभूति करने लगता है। महात्मा गाँधी इसी कोटि के सन्त थे। सत्य, अहिंसा व सदाचार ही उनके जीवन के परम लक्ष्य थे।

बन्दो गुरुपद कंज, कृपा सिन्धु नर रूप हरि।
महा मोह तम पुन्ज, जासु बचन रवि-कर-निकर ॥

२–मन की साधना

परम पूज्य गुरुदेव चच्चा जी की साधना व अभ्यास का मुख्य ध्येय मन की साधना ही है। चच्चा जी ने बतलाया कि इस शरीर के तीन रूप हैं। स्थूल, सूक्ष्म व सूक्ष्म से भी परे आत्मा है। स्थूल शरीर को हम सब देखते ही हैं। सूक्ष्म शरीर में मन, बुद्धि, चित्त अहंकार आदि हैं तथा इससे परे आत्मा है। मन ही एक ऐसा केन्द्र बिन्दु है जो हमारे शरीर की इन्द्रियों को कार्यरूप में परिणित करने की आज्ञा देता है। बुद्धि इसका वजीर है। शरीर में मन ही एक ऐसा अंग है जो मनुष्य को ईश्वर का साक्षात्कार करा सकता है और यही मनुष्य को नीचे से नीचे गिरा सकता है। शरीर के अन्त हो जाने पर और सब चीजें नष्ट हो जाती हैं। मन ही एक ऐसी वस्तु है जो अपने साथ कर्मों की गठरी बाँधकर दूसरे जन्म में उनका फल भोगता है। इस प्रकार यह जीव को चौरासी लाख योनियों में घुमाता व भटकाता रहता है। काम, क्रोध, मोह, लोभ तथा इन्द्रिय जन्म सुखों के भोग में ही यह क्षणिक आनन्द में मगन रहता है। जन्म-जन्मान्तरों के कर्म व संस्कार इसको इस प्रकार घेरे रहते हैं कि यह कभी भी सोते या जागते किसी भी अवस्था में स्थिर नहीं रहता। सोते समय यह नाना प्रकार के स्वप्न देखता

रहता है और जागृत अवस्था में सारे संसार को अपने अन्दर बसा कर उसमें रस लेता रहता है। चंचल स्वभाव के कारण यह अपने को कहीं स्थिर नहीं रखता और न शांति का ही अनुभव करता है तथा अन्त समय भी यह उन्हीं सब बातों को स्मरण करता हुआ शरीर त्यागता है। गीता में कहा है:—

यं यं चापि स्मरन भवं, त्यजत्यते कलेवरम।
तत मवेति कौन्तय, सदातद् भाव भावितः॥

अर्थात् जिस-जिस भाव को स्मरण करता हुआ जीव प्राण छोड़ता है उसी-उसी भाव को वह दूसरे जन्म में प्राप्त करता है। और यही बात भी है कि जीवन भर मन जिसमें अधिक लगा रहेगा, वही अन्त समय में भी याद आयेगा, यदि स्त्री का ध्यान आयेगा, तो फिर अगले जन्म में स्त्री होना पड़ेगा, पुत्र में अधिक आसक्ति रहेगी तो फिर मर कर पुत्र होना पड़ेगा। संसार में सद्गति चाहते हो तो सतर्क होकर व्यवहार चलाओ और जहाँ तक हो सके मन को व्यवहार से बचाओ और मन का थोड़ा सा सहयोग देकर तन और धन से व्यावहारिक कार्य करो। वास्तव में देखा जाय तो मन को कोई नहीं चाहता है। यह व्यर्थ ही अपने आप को नश्वर वस्तुओं में फँसाये रहता है। इष्ट मित्र, कुटुम्बी आदि सब अपनी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति चाहते हैं। आपके मन को कोई नहीं चाहता। यदि आप अपने पुत्र को खिलौने आदि या जो वस्तु वह मांगे उसका प्रबन्ध न करो और उससे कहो कि बेटा हम मन से तुमको प्यार करते हैं तो क्या वह इससे सन्तुष्ट हो जायेगा। अपनी स्त्री की आवश्यकताओं की यदि पूर्ति न करो और उससे कहो कि हम हमेशा तुम्हारा स्मरण मन से करते रहते हैं, मन से तुमको कभी नहीं भूलते तो क्या वह सन्तुष्ट रहेगी। इष्ट-मित्र जो तुमसे व्यवहार में सहायता-सहयोग चाहते हैं यदि उनको सहयोग न दो और कहो कि मन से हम आपको बहुत मानते हैं, तो वे यही कहेंगे कि अपना मन अपने पास रखिये और बन सके तो हमारा अमुक-अमुक कार्य कर दीजिये। कहने का तात्पर्य यही है कि संसार में कोई भी आपके मन को नहीं चाहता। यहाँ सभी तुम्हारे तन व धन के ग्राहक हैं। मन तो तुम जबरदस्ती दूसरों के गले लगाते हो। जिस मन को कोई नहीं चाहता वही मन ईश्वर की प्राप्ति मे काम आता है। पूज्य चच्चाजी कहा करते थे कि उन्हें कोई भेंट नही चाहिए मन की भेंट कोई दे सके तो दे। इसलिए संसार के बाजार में तन और धन से व्यापार करना चाहिये और मन को अपने इष्टदेव के चरणों में लगाना चाहिए। प्रश्न यह होता है कि सांसारिक कार्यों में मन न लगाया जाय तो कार्य कैसे होंगें। चच्चा जी के साधन में यही बतलाया गया है। उनका कहना था कि जिस प्रकार कोई लोभी या कन्जूस अपने धन की चिन्ता रख कर उसी में मन लगाये रहता है, कोई कामी पुरुष किसी स्त्री अथवा कामुक वस्तुओं का ध्यान किया करता है। कोई सती नारी अपने पति के दर्शन हृदय में हमेशा करती रहती है वह सब भी संसार का कार्य करते ही हैं। उसी भाँति मन को भी इष्टदेव श्री गुरु भगवान के चरणों में लगाकर संसार के कार्य करते रहना चाहिये।

चच्चा जी कहा करते थे कि हर काम प्रारम्भ करते समय अपने इष्टदेव का ध्यान करके तथा उसके फल को भगवान पर छोड़ कर जो कार्य सम्पादन किया जाता है उसमें निलिप्तता रहती है। यह भाव नहीं रहता कि मैंने यह कार्य किया है। वह कहते थे कि यदि हम अपने को गुरुदेव का सेवक समझकर उनकी आज्ञा समझकर सेवा भाव से संसार का कार्य करते रहें तो गुरु-कृपा से ऐसा भाव रख कर कार्य करने से किसी काम में कतपिन का भाव खत्म हो जाता है और हमारे मन में उसके फल की इच्छा न होने से सुख, दुख, मान अपमान, राग द्वेष आदि की भावनायें खत्म होकर वैराग्य की भावना पैदा हो जायेगी। वैराग्य की भावना से संकल्पों का नाश हो जायेगा तथा उससे जनित काम, क्रोध, मोह, लोभ तथा इन्द्रियों का पूर्ण रूप से निग्रह हो जायेगा तथा बुद्धि बहुत ही सुखपूर्वक धैर्य के मन्दिर में निवास करने लगेगी। यदि बुद्धि को धैर्य प्राप्त हो जाय तो वह मन को धीरे धीरे अनुभव के मार्ग में चलाने लगेगी और अन्त में जाकर उसे परमात्ममन्दिर में बैठा देगी। इस सम्बन्ध में पूज्य चच्चा जी महाराज छत्रपति शिवाजी का एक किस्सा कहा करते थे। शिवा जी अपने गुरु जी के बड़े भक्त थे। उनके मन में वैराग्य पैदा हुआ और उन्होंने अपने गुरु समर्थ रामदास जी से कहा महाराज मैं अपना यह सारा राजपाट आपको दान देना चाहता हूं। गुरु जी ने उनकी परीक्षा लेनी चाही। उन्होंने कहा अच्छा राज दरबार लगाकर इसकी घोषणा कर दी जाय। शिवा जी ने राज-दरबार लगा कर अपना राजपाट, धन दौलत, खजाना, सारा परिवार गुरु जी को सौंप दिया। खजाने की चाबियां गुरु जी ने अपने झोले में डाली और शिवाजी को लेकर रनवास व खजाना आदि देखा। उन्होंने शिवा जी से कहा : शिवा अब तू क्या करेगा। शिवा जी ने कहा महाराज मैं भिक्षा मांगकर आपकी सेवा करूंगा गुरु जी ने कहा कोई नौकरी करोगे। शिवा जी ने कहा जो आपकी आज्ञा होगी वही करूंगा। गुरुदेव ने शिवाजी से कहा आज से तुम मेरे नौकर हो। यह सारा राज-पाट तुमको मेरी आज्ञा से देखना है। रनवास की सभी रानियां मेरी पुत्रियां हैं उनकी सुख सुविधा का तुम्हें ध्यान रखना है सारा खजाना मेरा है इसको जनता की सेवा व सत्यकार्यों में लगाना है। इस सबके लिए तुम्हारी तनख्वाह पेट भर भोजन व वस्त्र होंगे क्या तुम्हें मंजूर है। शिवाजी ने गुरु की आज्ञा शिरोधार्य की और उनके सेवक के रूप में राज्य चलाया जिससे उनकी इतनी ख्याति हुई।

पूज्य चच्चा जी से अक्सर साधक लोग कहा करते थे कि चच्चा पूजा में मन नहीं लगता। उसका उत्तर चच्चा जी देते थे कि उनकी साधना व अभ्यास से मन के जितने भी विकार होते हैं वह सब उभड़ते हैं। जिस प्रकार सूर्य के उदय होने पर सब अच्छी व बुरी चीजें भासित होने लगती हैं उसी भाँति आत्म प्रकाश से सब गुण व अवगुण मन में उभड़ने लगते हैं। इससे साधकों को घबड़ा कर अपनी साधना नहीं छोड़नी चाहिए।

फिर इस प्रकार से अनियन्त्रित छोड़ा हुआ मन जहां-जहां जाय, वहां से उसे नियन्त्रित करके लौटा लाना चाहिए। बस, इसी से उसे धीरे-धीरे स्थिर रहने की आदत पड़ जायेगी। इसके उपरान्त आत्म-प्रकाश में सारे विकार भस्म होकर उसी स्थिरता की सहायता से मन आप ही आप आत्म-स्वरूप के पास पहुंच जायेगा। फिर उस आत्म-स्वरूप को देखकर वह उसके साथ मिल जायेगा। चच्चा जी ने बताया कि चंचलता तो इस मन का स्वभाव ही है परन्तु फिर भी यदि अभ्यास का आश्रय लेकर इसे साधना के मार्ग पर लगाया जाय तो कुछ समय बाद यह भी स्थिर हो जायेगा इसका कारण उन्होंने बताया कि मन की यह एक अच्छी आदत है कि इसे जिस बात का मजा मिल जाता है, फिर उसी का इसे चस्का लग जाता है। इसलिए इसे घुमा फिरा कर और कौतुक के द्वारा आत्म-सुख का चस्का लगाना चाहिए।

पूज्य चच्चा जी ने एक बार कहा था कि यह मन पत्थर से भी कठोर होता है। जब तक इसको अपने निजी-निजी बंधु बांधवों, पुत्रों, स्त्री आदि से कठोर यातना अथवा भर्तस्ना नहीं मिलती इसका मोह संसार से नहीं छूटता। मोह में मनुष्य इस प्रकार फंसा रहता है कि यदि उसको स्वर्ग का भी सुख मिले तो वह उसको स्वीकार नहीं करता। इस प्रसंग में नारद जी की एक बड़ी रोचक कहानी है। जिसे चच्चा जी प्रायः सुनाया करते थे। कहानी इस प्रकार है:—

एक वैश्य को अपने पुत्रों से बड़ा प्रेम था। महर्षि नारद उस नगर में पधारे तो उस वैश्य ने नारद जी को देखकर उनका स्वागत किया। उसकी श्रद्धा भक्ति देखकर नारद जी ने उसका एक गिलास दूध पी लिया। वैश्य ने पूंछा—"महाराज, कहां से आ रहे हो? नारद जी ने कहा—"स्वर्ग से आ रहा हूं।" वैश्य ने कहा—"महाराज मुझे भी स्वर्ग ले चलिए।" नारद जी ने कहा—"थोड़ा मृत्यु लोक घूमकर लौट कर आऊंगा तो ले चलूंगा।" नारद जी ने लौटने पर सेठ जी से कहा—"सेठ जी स्वर्ग चल रहे हो?" सेठ जी ने कहा—"महाराज, चलना तो अवश्य है पर ये लड़के बहुत छोटे हैं और नासमझ हैं, ये लोग गृहस्थी का काम सम्भाल नहीं सकेंगे, थोड़े दिन में ये काम-काज सम्भालने योग्य हो जायें तो चलेंगे।" थोड़े दिन बाद नारद जी फिर आये और पूंछा—"सेठ जी, अब चलोगे?" सेठ जी ने कहा—"हां महाराज, अब तो लड़का बहुत बड़ा हो गया है, काम काज भी कुछ देखने सुनने लगा है कमी यह है कि अभी अपनी पूरी जिम्मेदारी नहीं समझता। अगले वर्ष इसका विवाह कर दें फिर निश्चित हो जायें तो चलेंगे।" नारद जी चले गए और चार वर्ष बाद फिर लौटे तो दुकान पर उनका लड़का मिला। नारद जी ने उससे पूछा कि सेठ जी कहां हैं? लड़के ने कहा—"महाराज, क्या बतायें एक ही तो हमारे पिता जी घर में सब काम सम्भाले हुए थे, उनका शरीर छूट गया, तबसे हम तो बड़ी परेशानी में हैं।" नारद जी ने ध्यान करके

देखा तो सेठ जी मर कर उसी घर में बैल बने हुए हैं। नारद जी बैल के पास गए और कहा—"सेठ जी अब तो मनुष्य शरीर भी छूट गया, अब तो स्वर्ग चलोगे न? बैल ने कहा—"महाराज, आपकी मेरे ऊपर बड़ी कृपा है और मैं भी चलने को तैयार हूं पर सोचता हूं कि घर के और सब बैल इतने सुस्त हैं कि यदि आगे मैं न चलूं तो कुछ भी काम न हो पावे। कुछ नये बैल आने वाले हैं तब तक मैं इनका काम सम्भाल दूं, फिर आप कृपा करना तो मैं अवश्य चलूंगा।" नारद जी चले गए फिर दो चार वर्ष बाद लौटे। उन्हें तो अपना बचन पूरा करना ही था क्योंकि वे सेठ जी का एक गिलास दूध पी चुके थे, इसीलिए बार बार उसके पास आते थे। इस बार आये तो बैल नहीं दिखा। लड़कों से पूछा—"तुम्हारा जो बूढ़ा बैल था वह कहां है?" लड़कों ने दुखी होकर कहा—"महाराज, वह तो बड़ा मेहनती बैल था। सबसे आगे चलता था। जबसे वह मर गया तब से वैसा दूसरा बैल नहीं मिला।" नारद जी ने फिर ध्यान लगा कर देखा तो उसी घर में सेठ जी कुत्ता बन कर आगे पहरा दे रहे हैं। नारद जी ने कुत्ते के पास जाकर कहा—"कहो सेठ जी, क्या समाचार हैं? तीन जन्म तो हो गए अब स्वर्ग चलने का क्या विचार है?" कुत्ते ने कहा—"महाराज, आप बड़े दयालु हैं एक ओर मैं आपकी दयालुता देखता हूं और दूसरी ओर लड़कों का आलस्य और बदइंतजामी। महाराज ये इतने आलसी हो गए हैं कि यदि मैं दरवाजे पर न रहूं तो लोग इन्हें दिन में ही लूट ले जायें। इसलिए सोचता हूं कि जब तक इनकी रक्षा होती रहे तो अच्छा है। थोड़े दिन में जरूर चलूंगा।" नारद जी फिर लौट गए, चार पांच वर्ष में फिर आये तो कुत्ता दरवाजे पर नहीं दिखलाई दिया। लड़कों से पूंछा तो पता चला कि वह मर गया है। ध्यान लगाकर देखा तो मालूम हुआ कि इस बार वह सर्प होकर इसी घर के तहखाने में खजाने की रक्षा करने के लिए बैठे हुए हैं। नारद जी वहां पहुंचे और सर्प से कहा—"कहिये सेठ जी, आप यहां कैसे बैठे हैं? स्वर्ग चलने का समय अभी आया कि नहीं?" सर्प ने कहा—"महाराज, ये लड़के इतने अपव्ययी हो गए हैं कि यदि मैं यहां न होता तो सारा खजाना खाली कर देते। सोचता हूं कि मेरी गाढ़ी कमाई का पैसा है, जितने दिन हिफाजत से रह जाय, उतना ही अच्छा है।" नारद जी फिर निराश होकर लौटे। बाहर आकर उन्होंने बड़े लड़के को बुला कर कहा कि तुम्हारे खजाने में एक भयंकर काल रूप सर्प बैठा है। ऐसा न हो कभी किसी को डस ले। इसलिए उसे मार कर भगा दो। ऐसे मारना कि उसके सिर में लाठी न लगे, सिर में लाठी लगने से वह मर जायेगा, इसलिए वह मरने न पावे यह अहतियात रखनी चाहिए और कूट पीट कर उसे खजाने से बाहर कर दो। महात्मा का आदेश पाकर लड़कों ने ऐसा ही किया। सारे शरीर में लाठियों की मार लगा कर और सिर को बचाकर उसे बाहर जंगल में फेंक आये। नारद जी वहीं पहुंचे और सेठ जी से मिले और कहने लगे—"कहिए सेठ जी, लड़कों ने खूब मरम्मत की। अभी आपका मन भरा कि नहीं। फिर से वापिस घर जाकर खजाने आदि घर बार की देखभाल करोगे कि स्वर्ग चलोगे?" सर्प ने कहा—

हां महाराज, अब तो मेरे भरपाये पूरे हुए अब अवश्य चलूंगा।" कहने का तात्पर्य यह है कि मन में संसार से मोह ही बन्धन का कारण होता है। मन का स्वभाव चिपकाने का है। यह गोंद की तरह चिपकता है। संसार में स्त्री, पुत्र, बंधु बांधव लिफाफे की तरह है। लिफाफे में कहां कितना गोंद लगाना है यही सोचने की बात है। यदि एक तोले के लिफाफे में दो तोला गोंद आपने लगा दी तो गोंद भी व्यर्थ जायेगी और लिफाफा भी बेकार हो जायेगा। अतः संसार में उतना ही मन लगाया जावे जिससे व्यवहार गंदा न हो। गोंद में थोड़ी चिकनाई लगा दोगे तो गोंद नहीं चिपकता। मन रूपी गोंद में थोड़ी परमात्मा की चिकनाई लगा दोगे तो फिर मन संसार रूपी लिफाफे में नहीं चिपकेगा। पूज्य चच्चा जी कहते थे कि छल कपट छोड़कर जो भी अपने इष्ट-देव की मन से आराधना करता है उसको भगवान की प्राप्ति अवश्य होती है। अपनी पुस्तक "गृहचर्या में नर नारी सहयोग" में उन्होंने लिखा है "जो चतुराई तथा छल छोड़ कर सच्चाई के साथ श्री भगवान की प्राप्ति हेतु आध्यामिक अभ्यास तथा साधन में प्रतिदिन लगा रहता है उसे प्रति मिनट और प्रति घटे ईश्वरीय मार्ग में सफलता मिलती रहती है।" निम्नलिखित चौपाई चच्चा जी अक्सर पढ़ा करते थे:—

"निर्मल मन जन सो मोहि पावा, मोहि कपट छल छिद्र न भावा।"

निर्मल मन कैसे हो, प्रश्न इस बात का है। जैसे पिता अपने पुत्र को वह चाहे जैसा भी हो, यदि कोई अपराध होने पर पुत्र उससे नम्रता पूर्वक क्षमा मांगते हुए अपने अपराधों को स्वीकार करते हुए प्रार्थना करे तो वह उसको क्षमा करते हुए प्रेम से गले लगा लेता है उसी भांति जब कोई मनुष्य बचपन से अब तक के अपने पापों दुराचारों की मानसिक परिक्रमा करके दीन भाव से परम पिता परमात्मा गुरुदेव से क्षमायाचना करता है तथा गुरुदेव की कृपा व उपकारों को स्मरण करता है, उनके चरणों में साधन व अभ्यास द्वारा नित्यप्रति प्रेम बढ़ाता जाता है, पश्चाताप करके रोता गिड़गिड़ाता है तो गुरुदेव का कोमल हृदय उसे अपनाता है तथा उनके दिव्य प्रकाश से उसके सब पाप नष्ट होकर उसका मन निर्मल जल की भांति शुद्ध हो जाता है और उसका प्रेम निरन्तर अपने इष्टदेव के चरणों में बढ़ता जाता है। पूज्य चच्चा जी ने अपनी उक्त पुस्तक में लिखा:—"नित्य प्रति किसी निश्चित समय पर बचपन से अब तक की मानसिक परिक्रमा करने पर मनुष्य वैराग्य रूपी आश्रय पाकर श्री भगवान के कमल स्वरूपी चरणों दृढ़ता के साथ शुद्ध हृदय होकर प्रेम करने लगता है।" भगवान के सामने रोने से पूज्य चच्चा जी कहते हैं कि हृदय का संताप दूर होता है। संसारी मनुष्यों के सामने रोने से मनुष्य पुरुषार्थहीन तेजहीन तथा बुद्धिहीन होकर मनुष्यता से गिर जाता है परन्तु श्री भगवान के सामने रोने से मनुष्य के जन्म जन्मान्तरों के पाप एक ही घड़ी में धुलकर वह ऐश्वर्य तथा भगवान को प्राप्त होता है। इसलिए संसारी मनुष्यों के सामने झीका-झांकी करना

तथा रोना धोना छोड़कर अपने हृदय की सब गुप्त व प्रकट बातें एकान्त में अपने इष्ट-देव गुरु भगवान को ही सुनाना चाहिए।

मन की शुद्धि व सद्‌विचारों के लिए पूज्य चच्चा जी सत्संग शुद्ध वायुमंडल तथा सत्य व ईमानदारी से कमाए हुए भोजन के सेवन पर अधिक बल देते थे। सत, रज व तम तीन प्रकार के भाव भोजन व संगत से ही मन में उत्पन्न होते हैं। जैसी आप सोहबत करेंगे वैसे ही आपके आचार विचार होंगे। इसलिए वह अच्छी सोहबत यानी सत्संग करने के लिए कहते थे। रामायण में लिखा है।

"सठ, सुधरहि सत्संगत पाई, पारस परस कुधात सोहाई।"

भोजन के बारे में उनका कहना था कि कुधान्य भोजन तथा धन ग्रहण करने से बुद्धि भ्रष्ट होती है। बुद्धि भ्रष्ट होने पर मन भी दूषित हो जाता है और कुविचार पैदा होते हैं। पूज्य चच्चा जी स्वयं अपने सरकारी सेवाकाल में किसी के यहां पानी भी नहीं पीते थे। अपनी उक्त पुस्तक में उन्होंने लिखा है:—"प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि अपने पुरुषार्थ से अपना निर्वाह करें। जो अपने सम्बन्धियों तथा अन्य लोगों के बल पर जीवन निर्वाह करता है अथवा उसके नाम से यश और कीर्ति प्राप्त करता है वह पुरुषार्थ हीन हो जाता है और अपने कल्याण मार्ग से गिर कर अधोगति को प्राप्त होता है।" एक दृष्टान्त वह सुनाते थे। एक बड़े महात्मा जी एक ग्राम में पहुंचे। उनकी बड़ी ख्याति थी। उनकी ख्याति सुनकर उसी ग्राम के एक बड़े सेठ ने चाहा कि महात्मा जी को घर पर बुलाकर भोजन कराया जाय। विविध प्रकार के भोजन तैयार कराए गए। उन्होंने महात्मा जी को भोजन करने का निमंत्रण भेजा परन्तु महात्मा जी ने इंकार कर दिया। सेठ जी स्वयं आये परन्तु महात्मा जी उनके यहां भोजन करने नहीं गए। महात्मा जी ने जाकर एक गरीब बंजारे के यहां रूखा-सूखा भोजन बाजरे की मोटी रोटी खाई। सेठ जी को जब यह मालूम हुआ तो वह बड़ा क्रोधित हुआ और अपना अपमान समझा। वह महात्मा जी के पास गया और कहने लगा कि आपने हमारे यहाँ भोजन नहीं किया जहाँ आपको खाने के लिए मैंने षटरस भोजन तैयार किया था तथा आपने एक गरीब बंजारे के यहां सूखी रोटी पसन्द की इसका क्या कारण है। महात्मा जी बोले कारण देखना चाहता है तो देख। उन्होंने सेठ जी के यहाँ से भी भोजन मँगाया और उस बंजारे के यहाँ से भी रोटी मँगायी। महात्मा जी ने एक हाथ में सेठ जी के यहां का भोजन लेकर उसको मुट्ठी से दबाया तो उसमें से खून की धारा निकली। दूसरे हाथ से बंजारे की सूखी रोटी को दबाया तो उसमें से दूध की धार निकली। उन्होंने बताया कि सेठ तेरा भोजन बेईमानी तथा गरीबों के खून चूसकर कमाए हुए धन का है इसलिए उसमें से खून निकला है और इस बंजारे की रोटी उसकी मेहनत व ईमानदारी के पैसे की है अतः उसमें से दूध की धार निकली। सेठ जी महात्मा जी के पैरों पर पड़ कर उनसे क्षमा माँगने लगे। महात्मा भीष्म पितामह अपने अन्तिम समय

बाणों की शैया पर पड़े हुए थे। कौरव व पांडव दोनों पक्ष के लोग उपस्थित थे। भीष्म पितामह ने द्रोपदी जी से क्षमा मांगते हुए कहा बेटी मुझे माफ कर दो। तुम्हारे चीरहरण के समय मैं भी उपस्थित था। तुमने मुझसे सहायता मांगी थी लेकिन मेरी बुद्धि कौरवों के भोजन करने से उस समय भ्रष्ट हो गई थी। इसलिए मैं तुम्हारी सहायता न कर सका था।

परम पूज्य चच्चा जी ने मन की साधना के सम्बन्ध में अपनी पुस्तक 'गृहचर्या में नर नारी सहयोग' में जो वाणी व्यक्त की है वह निम्नप्रकार है :—

(१) अपने मन को कार्यरहित मत रक्खो किन्तु सदा अच्छे विचार मन के ऐसे भाग में रहने दो कि जब-जब तुम्हारे मन को दूसरे कामों से अवकाश मिले तब तब वे आकर तुम्हारे सामने खड़े हो जायें।

(२) मन से दुखों का चिन्तन न करना ही दुख निवारण की अचूक दवा है।

(३) नित्यप्रति नियमानुसार भाव व प्रेम के साथ श्री भगवान की उपासना करने से अन्त: करण शुद्ध हो जाता है। अन्त: करण शुद्ध होने से मन पवित्र होता है। मन के पवित्र होने से सत्य भाषण और अहिंसा स्वत: ही होने लगते हैं।

(४) सदाचार और दुराचारों का विचारों से घनिष्ट सम्बन्ध है विचारों की उत्पत्ति मन से है। इसलिए सभ्य तथा सदाचारी बनने के लिए मन को श्री भगवान के चरणों में लगाकर अच्छी बातों की ओर प्रेरित करना चाहिए।

(५) मन को पवित्र व निर्मल रखने से दिव्य शक्तियों तथा गुणों का विकास होता है। अपवित्र मन मनुष्य को दुराचारी और कुपथगामी बनाता है। मन को पवित्र बनाने के लिए सत्य भाषण और अहिंसा मुख्य साधन है।

(६) मन के विचारों का परिणाम शारीरिक स्वास्थ्य पर पड़ता है। खोटे विचारों से मन में अशान्ति होती है। एक प्रकार की अग्नि जलती है जो शरीर का नाश कर देती है। स्वास्थ्य बिगड़ जाता है।

(७) पवित्र विचारों से मन प्रसन्न रहता है। मन के प्रसन्न होने से शारीरिक स्वास्थ्य की वृद्धि होती है। अतएव सदा शुद्ध पवित्र, भले विचारों से अपने मन को पवित्र तथा शुद्ध रखना चाहिये।

३— प्रेम साधना

उमा कहहुं मैं अनुभव अपना, सत हरि भजन जगत सब सपना।
हरि ब्यापक सर्वत्र समाना, प्रेम ते प्रभु प्रगटहिं मैं जाना॥
देश काल दिसि विदिसिह मांही, कहहु सो कहां जहां प्रभु नाहीं।
अग जगमय सब रहित विरागी, प्रेम ते प्रभु प्रगटहिं जिमि आगी॥

रामचरित मानस में भगवान शिव जी ने कितने अधिकार पूर्ण शब्दों में कहा है

कि मैं जानता हूं कि भगवान प्रेम से प्रकट होते हैं इससे अधिक सत्य वाणी और किसकी हो सकती है। भक्तिमार्ग का पूर्ण आधार ही प्रेम होता है। बिना प्रेम के भक्त भक्तिमार्ग पर चल ही नहीं सकता। पूज्य चच्चाजी की साधना जैसा मैं पहले कह चुका हूं "प्रेम मार्ग" की है। वह कहते थे कि उनकी साधना से गुरु के चरणों में इतना अधिक प्रेम बढ़ जाता है कि उससे द्वैत की भावना समाप्त होकर साधक विदेह की स्थिति को प्राप्त होकर सबमें अपने इष्टदेव की ही मूर्ति देखने लगता है जैसा कि मानस में कहा है :—

"सियाराम मय सब जग जानी, करहुं प्रनाम जोरि जुग पानी"

यह पद चच्चाजी अक्सर पढ़ा करते थे :—

"श्याम श्याम कहत राधे, राधे श्याम भई। पूंछत निज सखियन सो राधे कहां गई॥"

पूज्य चच्चाजी स्वयं अपने पूज्य गुरुदेव महात्मा रामचन्द्रजी के प्रेम में इतने रंगे रहते थे कि उनको अपने शरीर का मान नहीं रहता था। एकबार की घटना है चच्चाजी के पूज्य गुरुदेव जो कि फतेहगढ़ में थे उनके हाथ में चोट लगी। चच्चाजी कहते हैं कि उसी समय उन्हें झांसी में उनके हाथ में एकदम कड़ाक की आवाज हुई जैसे उनके हाथ की हड्डी टूट गई हो और तीन दिन तक उनके हाथ में बहुत दर्द रहा। दर्द ठीक होने पर चच्चाजी ने अपने गुरुदेव जिनको वह 'लालाजी' कहा करते थे पत्र लिखा। उस पत्र के उत्तर में पूज्य लालाजी का उत्तर आया कि तुम मुझसे इतना प्रेम करते हो कि तुम्हें अपने शरीर का ध्यान नहीं रहता तथा तुम मेरे स्वरूप में स्थित रहने के कारण यह चोट जो मुझे लगी थी उसका भान भी तुमको हुआ था। अब मेरा हाथ ठीक है और तुम्हारा भी ठीक हो गया। पूज्य लालाजी भी पूज्य चच्चाजी को इतना प्रेम करते थे कि उन्होंने चच्चाजी से कहा था कि जो तुमको प्रेम करेगा उसकी मैं स्वयं चौकीदारी करूंगा। यह पूज्य चच्चाजी ने बतलाया था।

पूज्य चच्चाजी प्रेम दो प्रकार का बतलाते थे एक संसारी (इश्क मजाजी) दूसरा वास्तविक (इश्क हकीकी) परम पूज्य गुरुदेव के चरणों में प्रेम होना ही वास्तविक प्रेम है। सांसारिक पदार्थों और व्यक्तियों का प्रेम उसके पासंग के बराबर भी नहीं है उनका कहना था कि प्रेम का स्वरूप ही सत्य व अमर है। मनुष्य के जन्म होते ही वह स्वत: प्रेम के पाठ से ही जीवन आरम्भ करता है। सबसे पहले बालक अपनी मां से प्रेम करता है, फिर पिता आदि से, उस समय उसके मन में सिवाय प्रेम के और कोई विकार नहीं होते। अन्त समय में भी जिस वस्तु से अधिक प्रेम करता है उसी का स्मरण करता हुआ देह त्यागता है। वास्तविक प्रेमी भी चच्चाजी दो प्रकार के बतलाते थे एक वह जिनका प्रेम बाहर प्रकट नहीं होने पाता अर्थात् 'सालिग'। दूसरे वह जिनका प्रेम बाहर छल-छला उठता है वह 'मजदूब' होते हैं। पूज्य चच्चाजी प्रथम श्रेणी के सन्त अथवा प्रेमी थे इनका उद्देश्य यही रहता था कि अव्यक्त प्रेम ही पवित्र प्रेम है। जिसका प्रेम प्रकाश

में आ गया, प्रकट हो गया, बाजार में आ गया, उसे वह आनन्द कहाँ जो उसको गुप्त रखने वालों का प्राप्त है। उनका यह उपदेश कितना सारगर्भित है :—

सुमरन सुरत लगायके, मुंह ते कछु न बोल
बाहर के पट देइके, अन्दर के पट खोल,
जैसे माता गर्भ को राखो जतन बनाय,
ठेस लके तो छीन हो, ऐसे प्रेम दुराय,
जो तेरे घट प्रेम है, तो कहि-कहि न सुनाव,
अन्तरयामी जानि है, अन्तरगत का भाव ॥

सीताजी के स्वयंवर के समय भगवान राम के प्रेम में द्रवित होकर उनके आंखों में प्रेमाश्रु आ जाते हैं उनको वह आंखों में ही पी जाती है।

"लोचन जल भर लोचन कोना, जैसे परम कृपण कर सोना॥"

इस श्रेणी के प्रेमी भक्त हृदय में प्रेम का भीषण तूफान भरे रहते हैं पर क्या मजाल कि उसकी एक भी लहर बाहर आ जाय।

दूसरी श्रेणी के प्रेमी–'मजदूब' प्रेम के उभार को भीतर दबाने में सर्वथा असमर्थ पाते हैं प्रेम की ऐसी मदिरा वह चढ़ाये रहते हैं कि जिसका खुमार कभी उतरता नहीं। उन्हें न अपने दीन की फिक्र रहती है, न ईमान की, न धन दौलत की, न स्त्री की चिन्ता रहती है, न पुत्र की, न यश की चाह रहती है, मान की, न खाने की परवाह रहती है, न पीने की। ये सब कुछ भूलकर सदा सर्वदा अपने इष्टदेव की चिन्ता में निमग्न रहा करते हैं। उनके विरह व्याकुल होकर तड़फड़ाया करते हैं सारी रात करवटें बदलते ही बीत जाती है। हमारे कुछ भाइयों ने चच्चाजी के परम शिष्य भट्ट जी व सेठ लालूराम जी का नाम सुना होगा वह इसी भांति पूज्य चच्चाजी के प्रेम में दीवाने रहते थे। सेठ लालूराम जी ने न कभी कोई अभ्यास किया और न कोई साधना। उनका मुख्य ध्येय पूज्य चच्चाजी की आज्ञा का पालन करना व कभी कभी उनके पैरों में तेल लगाना ही था। इसी परमहंस की गति को प्राप्त हुए। वह इतने मस्त रहते थे कि पूज्य चच्चाजी के मैले कपड़ों को धोते हुए उनका धोवन पिया करते थे और उसी पानी से वह स्नान किया करते थे। पूज्य चच्चाजी भी उनका हमेशा ध्यान रखते थे और छोटे बच्चों की तरह उनकी देखभाल किया करते थे। पूज्य चच्चाजी के गुरुदेव पूज्य लाला जी के छोटे भाई परम सन्त रघुबर दयाल जी के बारे में चच्चाजी बतलाते थे कि वह पूज्य लालाजी के प्रेम में बिल्कुल पागल रहते थे। यदि पूज्य लालाजी कभी उनको बुलाते थे और वह मकान के ऊपर होते थे तो वहीं कूद पड़ते थे। उनके बारे में बतलाते हैं कि एक बार लालाजीने 'कहा कि तबला ऐसा बजाना चाहिए जैसे जलेहुए हाथों से' झटसे उन्होंने अपने हाथ जलते हुए तवे पर रखकर अपने हाथ जला लिए और तबला बजाना शुरूकर दिया।

पूज्य चच्चाजी कहते थे कि प्रेम के आगे हृदय में कुछ नहीं ठहरता। स्वार्थ भावना व अहंभाव होकर अपने इष्टदेव के सिवाय कुछ नहीं दिखाई देता। उसके मन-मन्दिर में उनके इष्टदेव विराजमान रहते हैं। "दिल के आइने में है तस्वीरे यार जब जरा गर्दन झुकाई देख ली" हनुमान जी ने अपने हृदय को चीर कर दिखाया था कि उनके हृदय में राम सीता विराजमान थे। ऐसे प्रेमी अपना जीवन ही इष्टदेव के लिए सर्वस्व निछावर करने को तैयार रहते हैं। गुरु प्रेम के बारे में पूज्य चच्चाजी ने एकबार एक कहानी सुनाई थी। एक महात्माजी एक ग्राम में पहुंचे। वहां कई शिष्य थे। खाने का समय हुआ तो उनके शिष्यों ने पूंछा महाराज आज का भोजन कहाँ होगा। उनके और शिष्यों ने जहां अच्छा भोजन मिल सकता था वहां चलने को कहा। परन्तु महात्मा जी ने अपने एक प्रेमी व गरीब भक्त जो भिक्षावृत्ति से अपनी जीविका चलाता था उसके यहाँ भोजन करने को कहा। उस भक्त के पास खबर भेजी गई। वह भक्त बड़ा प्रसन्न हुआ और अपना अहोभाग्य समझा परन्तु घर में कुछ भी न होने के कारण चिन्तित हुआ उसने अपनी पत्नी से कहा वह भी बड़ी गुरुभक्त थी। उसने अपने पति से कहा कि आप चिन्ता न करें ऐसा सौभाग्य कहाँ प्राप्त होगा। वह महिला बहुत सुन्दर थी। वह उसी ग्राम के एक सेठ के पास गई उसको देखकर वह सेठ कामातुर होकर उस पर मुग्ध हो गया और उससे आने का कारण पूंछा। उसने कहा कि मुझे अपने गुरुदेव को भोजन करवाना है आप प्रबन्ध करा दें और जो आप कहेंगें वह करूंगी। सेठ जी ने कहा ठीक है सब प्रबन्ध हो जायेगा। परन्तु तुमको भोजन के बाद आज रात्रि हमारे पास आना होगा। महिला तैयार हो गई। गुरुदेव जी के भोजन आदि की व्यवस्था उत्तम ढंग से की गई और गुरुदेव ने भोजन करके बिदाई ली। रात्रि का समय हुआ। उस महिला ने गुरुदेव के प्रसाद को थाली में लगाया और सेठ जी के मकान पर पहुंची। सेठ जी तो इन्तजार में ही थे। उस महिला ने कहा कि आप भोजन कर लें। सेठ जी के भोजन करते ही उनकी कामवृत्ति बदल गई और वह उस महिला के पैरों पर गिर कर कहने लगा माताजी मुझे क्षमा कर दो आज देवी रूप धारण करके आपने मुझे दर्शन दिये और मेरा उद्धार किया। वह उसके पैरों पर गिर पड़ा।

प्रेमी भक्तों के लिए गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है कि मैं स्वयं ऐसे भक्तों के पीछे इसलिए फिरा करता हूं कि उनकी चरण रज मेरे मस्तक पर गिर जाय। गोपियों का प्रेम परम आदर्श माना जाता है। भगवान कृष्ण से एक बार पूंछा गया कि तुम्हारे गुरु कौन हैं ? श्यामसुन्दर ने कई नाम बताये। तब पूंछा गया कि तुम्हारे असली गुरु कौन हैं? श्यामसुन्दर रो पड़े, उनका हृदय भर आया,कण्ठ रुद्ध हो गया, गो ··· इतना ही कह पाये। आगे कुछ भी न कह सके। उनसे कहा गया कि क्या आप ब्रजांगनाओं के बिना रह सकते हैं। श्यामसुन्दर रो पड़े। नहीं मैं यह सुन भी नहीं सकता रहने की बात तो अलग है। उद्धव जी का सारा ज्ञान गोपियों के प्रेम के आगे पानी हो गया।

भगवान कृष्ण दुर्योधन का मेवा मिष्ठान त्यागकर विदुर जी के यहाँ भोजन करने जाते हैं । उनके दरवाजे पर पहुंच कर विदुरजी को पुकारते हैं । उस समय विदुरानी नग्न होकर अपने वस्त्र धो रही थी । विदुर जी घर पर नहीं थे । श्री कृष्ण के ये बचन सुनकर वह नग्न अवस्था में ही दरवाजा खोलने चली जाती है :—

"नाराज हो क्या विदुर जी जब यह सुना भूली सभी,
श्री कृष्ण के यह बचन हैं पहचानकर भागी अभी, ।
तन की न सुधि जिसको भला क्या काम उसको बसन से
जो कर्म तन मन से करे, क्या काम उसको बचन से ।।

आई झटपट दौड़ कर , खोले तुरत कपाट ,
देखा तो बस है वही, कृष्ण हृदय सम्राट ।।

झुककर पड़ी पैरों अभी, प्रेमाश्रु अर्घ दिया वहीं ,
तन की न कुछ सुध बुध रही, फूली समाती है नहीं ।
भगवान उसका प्रेम लख, कुछ देर को चित्रित हुए,
मानो चकोरी चन्द्र दोनों, आज एकत्रित हुए ।।

श्री कृष्ण के भी लोचनों से प्रेम, के आसूं बहे ।
भगवान इसकी गुप्त भक्ती, पर ठगे से रह गये ।।

पीत पट फेंका हरी ने, तन बसन वह बन गया ।
आसन बिछाया शीघ्र ही, मन प्रेम रस से सन गया ।।
क्या कुछ खिलाऊँ मैं इन्हें, विदुरानि चिन्ता में पड़ी ।
पल भर न आत्मा ने उसे पर दी वहां रहने खड़ी ।।

भीतर गई विदुरानि, केला प्रेम से लाई अभी ,
अति संकुचित होती हुई, तन की भुलाई सुध सभी ।।

झट लग गई घनश्याम को, छिलके खिलाने छील कर ।
यों प्रेम रूपी मन्त्र से वश किया काला कील कर, ।।
वेसुध खिलाती वह रही, वेसुध हुए हरि खा रहे ।
क्या बात है इन फलों की, यो कथन करते जा रहे ।।

आये विदुर जी कहीं बाहर से अचानक उस घड़ी,
उस भक्त की भगवान से अति स्नेहयुत आंखें लगी ।

चरणाम्बुजों पर भक्त वह सीधा शिलीमुख सा गया,
मानों मनुज तन धारने का आज वह फल पा गया ।
श्री कृष्ण ने उसको उठाकर प्रेम से लाया गले,
भगवान के भी उस समय वह प्रेम के आसूं चले ।।

इतने में श्री विदुर ने क्या देखा अन्धेर ,
छिलके खाते श्याम हैं, गिरी-गिरी का ढेर ।
क्रोधित होकर बहुत ही , बचा बचा कर नैन,
खाटे मीठे बहुत ही , कहे नारि को बैन ।।

झट छीन कर फल आप अपने हाथ से छीले सभी ,
श्री कृष्ण को देने लगे खाने लगे वे भी अभी ।
निज चित्त में श्री विदुरजी प्रमुदित अमित गर्वित हुए ।
विदुरानि लज्जित देख यों हरि के बचन प्रकटित किये ।।

सिर झट हिलाया नाक, भौं,दृग में अभी सलवट पड़ी,
बस, बस, विदुरजी,बस करो, आने लगी फलियें कड़ी ।
विस्मित हुए अब तो विदुर विदुरानि हंस भीतर गई,
भगवान ने निज प्रेमिका की बात यों झट रख लई ।।

हो धन्य तुम भी विदुर जी, विदुरानि तू भी धन्य है,
हरि के हृदय को हर लिया, तुम सा जग में अन्य है ।
भगवान को प्यारा नहीं अभिमान युत सम्मान भी,
भगवान को प्यारा सदा, सम्मान युत अपमान भी ।।

इसी प्रकार रसखान कवि ने लिखा है :—
पाहन हों तो वही गिरि को, जो कियो सिर छत्र पुरन्दर धारन ।
जो खग हों तो बसेरों करों,नित कालिन्दी कूल कदम्ब की डारिन ।।
जो पशु हों तो कहा बश मेरो, चरों नित नन्द की धेनु मंझारन ।
मानुष हों तो वही रसखान, बसों ब्रज गोकुल गांव के ग्वारिन ।।

पूज्य चच्चाजी के चरण स्पर्श करते समय वही प्रेमानन्द प्राप्त होता था जैसे गाय अपने बछड़े को दूध पिलाती है उसी भाँति पूज्य चच्चाजी प्रेम की वर्षा किया करते थे । भक्त व भगवान में जो प्रेम होता है वही गुरु व शिष्य में भी होता है । पूज्य चच्चाजी ने बतलाया था कि भगवान ने अपने भक्तों को उनकी भक्ति व प्रेम के वश होकर अपने से अधिक अधिकार दे रक्खे हैं । वह कहते थे कि भगवान अपने बनाये हुए नियमों को नहीं तोड़ते परन्तु यदि उनके भक्त चाहें तो वह उनको भी तोड़ सकते हैं । बिन्दु कवि ने अपने पद में कहा है :—

प्रबल प्रेम के पाले पड़ कर, प्रभु को नियम बदलते देखा।
खुद का मान भले घट जाये, भक्त का मान न घटते देखा ॥
जिनकी केवल कृपा दृष्टि से, सबल सृष्टि को पलते देखा।
उनको गोकुल के गोरस पर सौ-सौ बार मचलते देखा ॥
जिनके चरण कमल कमला के करतल से न निकलते देखा।
उनको गोकुल के ग्वालिन संग, यमुना तट पर हँसते देखा ॥
जिनका ध्यान विरंचि शम्भु, सनकादिक से न सम्हलते देखा।
उनको ग्वाल सखा मंडल से, लेकर गेंद उछलते देखा ॥
जिनकी वक्र भृकुटि के भय से, सागर सप्त उबलते देखा।
उनको ही यशुदा के भय से, अश्रु-बिन्दु-दृग ढलते देखा ॥

पूज्य चच्चाजी कहते थे कि उनके सभी सत्संगियों को उन्होंने अपनी आत्मा से सींचा है वे सब उनकी आत्मा ही हैं। उनको वह अपना ही रूप समझते थे। मेरी पत्नी या बहनें जब कभी पूज्य चच्चाजी से मेरी शिकायत करती थीं तो वह यह कहकर सन्तुष्ट कर दिया करते थे कि तुम लोग नहीं जानती हो वह बहुत महान है। तुम लोग भाग्यशाली हो कि तुमको ऐसा पति अथवा भाई मिला है। मैंने पूज्य चच्चाजी से एक बार कहा कि चच्चाजी मैं बड़ा पापी हूं, मुझसे पूजा वगैरह कुछ नहीं होती कुछ मेरे ऊपर कृपा करें। चच्चाजीने कहा तुम्हारे ऊपर हम क्या कृपा करें तुम खुद ही कृपा रूप हो। पूज्य चच्चाजी कहते थे कि प्रेम में न जाति पाँति का भाव, न नीच ऊँच का भाव न छोटे बड़े का भाव, अथवा किसी भी प्रकार की वासना या भाव नहीं रहता। सर्वत्र प्रेम ही प्रेम दिखाई देता है। निज स्वरूप में ही वह अपने को, अपने इष्टदेव को और सारे संसार को देखता है। पूज्य चच्चाजी ने बताया कि जब उनकी साधना व अभ्यास द्वारा कोई साधक अपने को दीन हीन व निस्सहाय समझते हुए, निः स्वार्थ भाव से अपने अंह को खत्म कर अपने इष्टदेव को मन से शरणागत करता है तो उसके इष्टदेव साधक को पिता के समान गले लगा लेते हैं। उस समय के प्रेम मिलन का वर्णन करना वाणी द्वारा सम्भव नहीं है। साधक इसका स्वयं अनुभव करता है उसकी स्थिति वैसी ही होती है जैसी कोई उमड़ती हुई नदी समुद्र में मिलती है, कोई सती नारी अपने प्रियतम को पाकर आनन्द विभोर होती है, चन्द्रमा और चकोर का मिलन होता है. अन्धे की दृष्टि मिलने पर होती है अथवा जीव को ब्रह्म की प्राप्ति होती है। उस समय साधक बिदेह अवस्था को प्राप्त कर सच्चिदानन्द को प्राप्त होता है। उसके प्रेमाश्रु अविरल गति से बहने लगते हैं और निर्मल हृदय होकर वह आत्म प्रकाश में निज स्वरूप के दर्शन करता है। यही दर्शन गीता में श्री कृष्ण ने अर्जुन को कराये थे। रामायण में भगवान राम ने कागभुशुंड जी को कराये थे। यही प्रेम का स्वरूप है, यही अन्तिम लक्ष्य है और इसी को तुरीय अवस्था की प्राप्ति कहते हैं।

रामचरित मानस में गोस्वामी तुलसीदास जी ने राम के प्रति भरत जी के प्रेम का जो वर्णन किया है वह अतुलनीय है। वह भगवान के इतने प्रिय पात्र थे कि गोस्वामी जी ने उसका वर्णन इस भाँति किया है—

"भरत सरिस को राम सनेही, जगु जपु राम राम जपु जेही ॥"

प्रयाग में जब भरत जी भरद्वाज ऋषि के आश्रम पर पहुंचते हैं तो ऋषि अपने को धन्य मानते हैं। और कहते हैं कि सब साधनों का फल तो श्रीराम, लक्ष्मण और सीता जी का दर्शन है और उनके दर्शन का महान फल तुम्हारा दर्शन है। आगे चलकर तुलसीदास जी कहते हैं:—

"जो न होत जग जनम भरत को, सकल धरमधुर धरनि धरत को ॥

जब भरत जी चित्रकूट के निकट पहुंचते हैं तो उन्हें भगवान के चरण चिन्ह दिखाई देते हैं जिन्हें देखकर वह उस भूमि पर लोटने लग जाते हैं और बार-बार भगवान की चरण धूलि को मस्तक और आँखों में लगाते हैं। उन्हें देखकर भगवान के मिलन के समान सुख होता है और इनकी दशा देखकर पशु, पक्षी और जड़ जीव भी प्रेममग्न हो जाते हैं। चेतन जड़ हो जाते हैं और जड़ चेतन बन जाते हैं। इनकी यह दशा देखकर माता कौशिल्या को यह शंका होने लगती है कि यह राम के वियोग में प्राण धारण कर सकेंगे या नहीं। स्वयं महाराजा जनक जो महान ज्ञानी थे, भरत की स्थिति को देखकर यहाँ तक कह देते हैं कि भरत की महिमा का वर्णन करना तो दूर रहा मेरी बुद्धि उनकी छाया को छल से भी नहीं छू सकती:—

'कहद काह छल छुअत न छाँही।'

सबरी जाति की भीलिनी थी। उसके गुरु ने उसको आशीर्वाद दिया था कि तुम्हें भगवान राम के दर्शन होगें। १२ वर्ष तक वह रामजी की प्रतीक्षा करती रही। जगलों में मीठे बेर वह चखा कर भगवान रामजी के लिए रख लेती थी। भगवान उसके आश्रम पर आते हैं। उन्होंने और ऋषियों के आश्रमों की ओर देखा भी नहीं। शबरी के आनन्द का क्या ठिकाना। वह चरणों में लोट पोट हो गयी। नेत्र के आँसुओं से पैर धोए। पलकों के पांवडे बिछाये, हृदय के सिंहासन पर भगवान को बिठाया, भक्ति के भाव में वह अपने को भूल गई। अपने जूठे फल भगवान को खिलाये। ऋषियों ने सुना भगवान आए हैं तो सब उसके आश्रम पर पहुँचे। एक मुनि ने पूछा प्रभो, आप हम सबके आश्रमों को छोड़कर पहले यहाँ कैसे पधारे ? भगवान ने सभी ऋषियों की चरण बन्दना की और बोले भगवन, समस्त ऋषि मुनि तो मेरे बन्दनीय हैं ही। मैंने लोगों से पूँछा यहाँ भक्त कौन है ? भक्त पूँछने पर सभी ने मुझे शबरी का ही नाम बताया। अतः मुझे भक्ति प्यारी है उसी के आवेश में मैं यहाँ चला आया। ऋषियों ने प्रार्थना की

कि भगवान ! हमारी यह पुष्करिणी नदी बड़ी सुन्दर थी, अरण्य में यही हमारा जीवन थी, इसका जल बड़ा निर्मल था। अब इसमें कीड़े पड़ गए हैं किसी तरह इसका जल अच्छा कर दें। भगवान ने कहा कि इसका कारण मैं आपको बताता हूं। एक ऋषि नदी तीर से स्नान करके आ रहे थे, शबरी रास्ते को झाड़ रही थी, अंधेरा हो रहा था उसने आते हुए उन ऋषि को नहीं देखा। देखते ही वह एक टीले से सटकर खड़ी हो गई। रास्ता बहुत छोटा था, ऋषि उधर से चले आ रहे थे, भूल से उसके वस्त्र से उनके पैरों का स्पर्श हो गया। इस पर उन्हें क्रोध आ गया, शबरी को बहुत भला बुरा कहा और अन्त में पुन: शुद्धि की नियत से नदी न जाकर पुष्करिणी में ही उन्होंने स्नान कर लिया। इसीसे इसमें कीड़े पड़ गये हैं। अब इसका प्रायश्चित यही है कि शबरी के चरण का जल इसमें डाला जाय, ऐसा करने से यह शुद्ध हो जायगा।

ऋषियों को अपनी भूल मालूम हुई, उन्होंने भगवान की आज्ञा का पालन किया पुष्करिणी का जल पुन: निर्मल हो गया। इस प्रकार भगवान ने समस्त ऋषियों के सामने शबरी की भक्ति की महिमा स्थापित की।

इस प्रकार प्रेम व भक्ति द्वारा प्रहलाद, ध्रुव, केशव, जटायु, मीराबाई, सूरदास, कबीरदास, तुलसीदास, गुरुभक्त सन्त ज्ञानेश्वर आदि आदि ने अपने अपने इष्टदेव को प्राप्त किया और अन्त में उनमें ही लीन हो गए।

प्रेम साधना का गुप्त रहस्य गुरु की आज्ञा पालन करने व उनके चरणों में अपने मन को लगाने में ही है। पूज्य चच्चा जी ने एक बार कहा था कि पूजा किसी भी स्थान से शुरू हो अन्त में वह गुरुचरणों में ही जाकर सफल होती है। उसी से साधक का अहं भाव खत्म होता है। अहं भाव खत्म होने पर ही निज स्वरूप के दर्शन होते हैं। गुरु की आज्ञा में ही उनकी सारी महिमा भरी रहती है। आज्ञा पालन से ही उनकी महिमा समझ में आती है उनकी महिमा जानकर ही श्रद्धा व विश्वास बढ़ता है। तथा श्रद्धा विश्वास बढ़ने से ही उनके चरणों में निरन्तर प्रेम बढ़ता जाता है:—

"राम कृपा बिन सुनु खगराई, जानि न जाइ राम प्रभुताई।
जाने बिनु न होई परतीती, बिनु परतीति होई नहिं प्रीती॥
प्रीति बिना नहीं भगति दृढ़ाई, जिमि खगपति जल के चिकनाई।
बिन गुरु होई कि ग्यान, ग्यान कि होई बिराग बिनु॥
गावहिं बेद पुरान, सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु॥
कोऊ बिश्राम कि पाव, तात सहज सन्तोष बिनु।
चलै कि जल बिनु नाव, कोटि जतन पचि पचि मरिअ॥"

४— नाम की महत्ता

परम पूज्य चच्चा जी की साधना की आधार शिला ही नाम है। चच्चा जी कहते थे कि 'गुरु' शब्द का अर्थ 'आत्म प्रकाश' है। अभ्यास द्वारा अपने इष्टदेव के नाम की साधना करने से साधक के हृदय में दिव्य प्रकाश जाग्रत होकर वह अपने स्वरूप का साक्षात्कार करता है तथा तुरीय अवस्था को प्राप्त कर वह उस आत्मप्रकाश के अनन्त और अक्षय भण्डार में विचरण करता हुआ विदेह अवस्था को प्राप्त होता है और अन्त समय उसी में लीन हो जाता है। अक्सर हमारे सत्संगी भाइयों ने साधकों ने पूज्य चच्चा जी के मुख से जम्हाई लेते समय उठते बैठते सोते व लेटते समय व बातचीत करते समय 'हे गुरुदेव' 'हे गुरु भगवान' के शब्द निकलते सुना होगा। गुरु के मुख से निकले हुए शब्द ही उनका मन्त्र होता। हमारे प्रेमी भाइयों ने सन्त कबीरदास जी का नाम सुना होगा। जब वह अपने गुरु जी श्री रामानन्द जी के पास मन्त्र लेने गये तो उनके गुरुदेव उन्हें शूद्र अथवा नीच जाति का जानकर गुरु मन्त्र देने से इन्कार कर देते हैं उनको बड़ा दु:ख होता है। एक रात्रि के समय जहाँ से उनके गुरुदेव निकला करते थे उसी रास्ते में वह लेट गये। रात्रि में गुरुदेव उस रास्ते से निकले परन्तु अँधेरा होने के कारण उन्हें कुछ दिखाई नहीं दिया और उनका पैर कबीरदास जी पर पड़ गया। गुरुदेव के मुख से एक दम 'राम राम' शब्द निकल पड़े। उन्होंने इन शब्दों को ही गुरुदेव का मन्त्र मान कर उसका अभ्यास किया तथा फलस्वरूप वह एक महान सन्त की गति को प्राप्त हुए।

चच्चाजी किसी गलती, या पाप के प्रायश्चित रूप में अक्सर राम नाम के जाप करने को ही कहा करते थे। वह स्वयं भी अक्सर उंगलियों से गिनते हुए नाम का जाप किया करते थे। देहावसान के समय भी साधकों ने देखा था कि वह अपनी उंगलियां ऐसे रक्खे हुए थे कि मानो जाप कर रहे हों। पूज्य चच्चा जी कहते थे उनके साधन पर चलकर अभ्यास द्वारा साधक का निरन्तर नाम जाप स्वत: होने लगता है। वह कभी किसी से माला के द्वारा या अन्य रूप से कोई नाम अथवा मन्त्र जाप के लिए नहीं कहते थे। इस बात का अनुभव साधक लोग स्वयं ही करते होंगे। मन के द्वारा अपने इष्टदेव के नाम का ध्यान व स्मरण करने से नाम का जप निरन्तर होने लगता है। हर प्रकार की कठिनाइयों, दुख, दर्द, आपत्तियों, पश्चाताप स्वरूप, पूज्य चच्चा जी नाम जप द्वारा ही निवारण करने को कहते थे। चच्चाजी ने अपनी पुस्तक में लिखा है:—"राम नाम गायत्री मन्त्र अथवा महामन्त्र का जाप नित्य करने से बुद्धि सबल व सात्विक होती है सब पाप जो काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार कष्ट से उत्पन्न होते हैं वे नाश हो जाते है और भगवान की सच्ची भक्ति प्राप्त होती है।" रामायण में नाम की महिमा का वर्णन गोस्वामी तुलसीदास जी ने निम्न पदों में किया है। वह कहते हैं कि नाम जाने बिना हम भगवान को भी नहीं पहचान सकते। यथा:—

"रूप विशेष नाम बिनु जाने, करतल गत न परहिं पहिचाने ॥
सुमरिअ नाम रूप बिन देखे, आवत हृदय सनेह बिसेखें ॥
राम नाम कलि अभिमत दाता, हित परलोक लोक पितु माता ॥
नहिं कलि करम न धरम बिबेकू, राम नाम अवलंबन एकू ॥
उलटा नाम जपत जग जाना, बालमीकि भये ब्रह्म समाना ॥
भाव कुभाव अनख आलसहू, नाम जपत मंगल दिशि दसहू ॥
कही कहहुं लग नाम बड़ाई, राम न सकहिं नाम गुन गाई ॥"

नारद जी का जब मोह दूर होता है तो वह भगवान से प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभु! मैंने आपसे बहुत अपशब्द कहे हैं यह सन्ताप कैसे दूर हो तो भगवान राम कहते हैं:-

"जपहु जाइ शंकर सत नामा, होइहि हृदय तुरत बिश्रामा।
कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना, एक अधार राम गुन गाना ॥

नाम के आधार से ही विद्वान, अनपढ़, पापात्मा, दुराचारी, संत, महात्मा सभी अपने कर्मों से मुक्त होकर ब्रह्मलीन हो गए हैं।

गीता में भगवान कृष्ण ने भी कहा है: अक्षरः परब्रह्म,। गोपियाँ भगवान कृष्ण का 'श्याम, श्याम' नाम कहते-कहते ही उन्हीं के रूप में परिवर्तित हो गईं। मीराबाई, सूरदास, तुलसीदास, भक्त प्रहलाद, ध्रुव, बालमीकि, आदि आदि सभी सन्त नाम के प्रताप से ही अपने इष्टदेव को प्राप्त कर सके हैं।

अतः हर सत्संगी व साधक को अभ्यास द्वारा गुरुदेव के बताये हुए साधन पर चलकर अपने मन को अपने इष्टदेव के नाम का ध्यान व जाप करके निरन्तर उनके चरणों में प्रेम बढ़ाते जाना चाहिए इसी के द्वारा परम लक्ष्य की प्राप्ति होना सम्भव है।

५— परम पूज्य चच्चाजी के तुच्छ दास पर उपकार

परम पूज्य चच्चाजी ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि "ईश्वरीय नियम है कि श्री भगवान की उपासना के पश्चात् मनुष्य जिस इच्छा की पूर्ति के लिये प्रार्थना करता है वह अवश्य स्वीकृत होती। इसलिए मनुष्य को बहुत सावधान होकर के ऐसी इच्छाओं की पूर्ति के लिए प्रार्थना करना चाहिए जो जन्म मरण के चक्कर में न डालकर सच्चे सुख और निरन्तर आनन्द के देने वाली हो। वह कहते थे कि उपासना करो पर कुछ याचना न करो। जैसे माता पिता अपने पुत्रों का सब प्रकार से कल्याण चाहते हैं उसी भाँति भगवान के शरणागति होने पर वह परम पिता परमात्मा स्वयं तुम्हारी सुख-सुविधा का ध्यान रखेंगे। वास्तव में परमात्मा जितना दे सकता है उतना जीव माँग नहीं सकता। तुम याचना करोगे तो अपनी हैसियत से ही कोई छोटी चीज माँगोगे

और परमात्मा देगा तो वह अपनी हैसियत से देगा। वह सर्वज्ञ है और सर्व शक्तिमान है। अतः जिस तरह व जिस परिस्थिति में वह रक्खे उसी में उसको धन्यवाद देते हुए प्रसन्नचित रहना चाहिए। पूज्य चच्चा जी कहते थे कि ईश्वर की भक्ति करने से माया तुम्हारे सामने हाथ जोड़े खड़े रहती है कहा है:—

"गुरु समरथ सर पर खड़े कहा कभी तोहि दास।
रिद्ध सिद्ध सेवा करें, मुक्ति न छोड़े पास ॥"

जैसा कि मैं पहले लिख चुका हूं मैं २१ रु० पर झांसी कलेक्ट्री में नौकरी करता था। आज पूज्य चच्चाजी की कृपा से मैं ९०० रु० माहवार पा रहा हूं। तथा उत्तर प्रदेश सरकार के सचिवालय में निजी सचिव के पद पर कार्यरत हूं। एक हाई स्कूल पास व्यक्ति के लिये यहाँ तक पहुंचा देना यह उनका चमत्कार व कृपा ही थी। मेरे परिवार के सभी सदस्यों के बारे में वह पूंछा करते थे। कुछ भी शिक्षित न होते हुए भी मेरा छोटा भाई, मेरे भतीजे आदि जिनकी पूज्य चच्चाजी को चिन्ता थी उनकी कृपा से सब अपनी सर्विस में लग कर अपना जीवन सुख से व्यतीत कर रहें है। पिता जी के स्वर्गवास होने पर मेरी तीन बहिनें शादी के लिये थीं। उनके लिए योग्य वर ढूंढ कर उन्होंने उनकी शादियाँ कराईं। मेरी चार पुत्रियों की शादियाँ भी उन्होंने उत्तम से उत्तम खानदान व वर ढूंढ कर कराईं जो कि सुख से अपना जीवन व्यतीत कर रही हैं। मेरे जैसे निर्धन व असहाय व्यक्ति के लिये यह कार्य कितने कठिन थे जिसका अनुमान मैं स्वयं लगाता हूं। पूज्य चच्चाजी की आज्ञा के फलस्वरूप ही मेरे पास एक पैसा न होते हुए बल्कि कर्ज से लदे होते हुए मेरे लखनऊ आने के पाँच वर्ष बाद ही लखनऊ में मकान बन गया जो कि आज कल एक लाख की कीमत का होगा। यह सब सुदामा के महल की तरह ही चमत्कार जैसा था। मेरी नौ पुत्रियाँ होते हुए भी वह इतना आत्मबल प्रदान किये हुए हैं कि उनकी कृपा से मेरे मन में किसी प्रकार की चिन्ता नहीं रहती। पूज्य चच्चाजी कहा करते थे कि जो इस आध्यात्मिक मार्ग पर चलता है उसको हमेशा बीमार, ऋणी तथा निन्दित होना पड़ता है। यह सब होते हुए भी गुरुदेव इतनी सामर्थ्य, शक्ति, धैर्य व आत्मबल दे देते हैं कि सब होते हुए साधक को इन सब बातों का ज्ञान भी नहीं होता और उसके कार्य उत्तम से उत्तम ढंग से सम्पादित होते रहते हैं। मैं कभी स्वप्न में भी नहीं सोच सकता था कि मैं झांसी कलेक्टरी से लखनऊ पहुँच जाऊँगा और वहाँ मकान भी बन जायेगा। यह सब चमत्कार सा ही प्रतीत होता है। इस प्रकार सामाजिक क्षेत्र में उन्होंने मेरी बगैर इच्छा के ही इस स्थिति पर पहुँचाया। क्या किसी के माँ बाप भी इतना उपकार अपनी संतान के साथ कर सकते हैं। मेरे पिता जी की मृत्यु पर चच्चा जी ने मेरे सिर पर हाथ रख कर कहा था "काशीप्रसाद, तुम चिन्ता न करो सब ठीक हो जायेगा। उनका यह आशीर्वाद मुझे वरदान सिद्ध हुआ।

आध्यात्मिक क्षेत्र में मैं यही कह सकता हूँ कि जब मैं अपने कुकर्मों और पापों की ओर दृष्टि डालता हूँ तो यह पाता हूँ कि मेरा जैसा पापी संसार में कोई नहीं होगा। ऐसा कोई पाप बाकी न होगा जो मैंने न किया हो। फिर भी पूज्य चच्चा जी ने अपने पतितपावन स्वभाव के कारण मेरा हाथ कभी नहीं छोड़ा। सिवाय भगवान के और ऐसा किसका हृदय हो सकता है। मेरे पापों की ओर उन्होंने कभी देखा ही नहीं कुछ दिन पूर्व चच्चा जी ने बड़ी प्रेम की मुद्रा में कहा था कि काशीप्रसाद तुमको एक बहुत बड़ी चीज मिलने वाली है। मेरा हृदय भर आया उनके चरणों पर सिर रख कर मैंने कहा चच्चा जी मुझे कुछ नहीं चाहिये। आपके चरणों में प्रेम बना रहे यही मुझे चाहिए। मुझे आभास होता है कि पूज्य चच्चा ने मेरी उस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया है बस मैं यही जानता हूँ। अपनी धर्मपत्नी को चिंतित देख कर मेरी भी इच्छा होती थी कि चच्चा जी से कह कर पुत्र कामना कर लूँ परन्तु उनके सामने जाने पर वह मेरी इच्छा खत्म हो जाती थी और सिवाय चच्चा के चरणों में प्रेम होने के और कोई इच्छा ही नहीं रहती थी। उनके कोमल हृदय की याद करके कितनी वेदना होती है, इसका साधक लोग स्वयं अनुमान करते होंगे। रामायण की निम्न चौपाई में यही भाव प्रदर्शित किया गया है:—

"एक शूल मोहि बिसर न काहू, गुरुकर कोमल शील स्वभाऊ।"

हमारे सत्संगी भाई पूज्य चच्चा जी के स्थूल शरीर न होने पर भी यह आभास करते हैं कि पूज्य चच्चा जी हमारे साथ हैं और उनकी कृपा हम सबके ऊपर पहले से भी अधिक है। अब वह स्वयं ऐसे साथ रहते है कि उनकी विस्मृति होती ही नहीं। यदि होती भी है तो उसके लिए बड़ा पश्चाताप होता है, तड़पन होती है और चच्चा जी फिर हमको गले लगा लेते हैं। जैसा कि वह अन्त समय में कह गये थे कि मैं अब आप सब लोगों के साथ स्थूल शरीर से नहीं ब्रह्म रूप में सदा सर्वत्र रहूँगा। वही दृश्य साकार होता है। उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि यही होगी कि उनके बताये हुए साधन व अभ्यास पर चल कर सत्यता व ईमानदारी तथा सदाचार से जीवन निर्वाह करते हुए अपने मन को उनके चरणों में लगाते हुए, उनकी पुस्तक 'गृहचर्या में नर-नारी सहयोग' के अनुसार अपने चरित्र को ढालते हुए उनसे सम्बन्धित सभी प्रेमियों की तथा सब प्राणियों की निःस्वार्थ भाव से सेवा करते रहें अन्त समय जैसा कि गीता में कहा है जो इस प्रकार अपने जीवन को सार्थक बनाता है उसे उसके इष्टदेव स्वयं आकर अपने में लीन कर लेते हैं।

□□

सदगुरु-स्तुति

भवानी शङ्करौ वन्दे श्रद्धा विश्वास रूपणौ।
याभ्यां बिना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तः स्थमीश्वरम्॥
वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकर रूपिणम्।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते॥
गुरु ब्रह्मा गुरु विष्णु गुरुर्देवः महेश्वरः।
गुरुर्साक्षात परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः॥
ध्यान मूलं गुरुमूर्ति पूजा मूलं गुरुर्पदम्।
मंत्र मूलं गुरुर्वाक्यं मोक्ष मूलं गुरुकृपा॥

श्री रामचन्द्र कृपालु भजु मन, हरण भव भय दारुणम्।
नवकंज लोचन कंज मुख कर, कंज पद कंजारुणम्॥
कन्दर्प अगणित अमित छवि, नव नील नीर सुन्दरम्।
पट पीत मानहु तड़ित रुचि सुचि, नौमि जनक सुतावरम्॥
भजु दीनबन्धु दिनेस दानव, दैत्य वंश निकन्दनम्।
रघुनन्द आनन्द कन्द कोशल, चन्द्र दशरथ नन्दनम्॥
सिर मुकुट कुण्डल तिलक चारु, उदार अंग विभूषणम्।
आजानु भुज सर चाप धर, संग्राम जित खरदूषणम्॥
इति वदति तुलसीदास शंकर-सेस-मुनि मन रंजनम्।
मम हृदय-कंज निवास कुरु, कामादि खल दल गंजनम्॥

आरती सदगुरु चरनन की करहु मन नख - दुति किरनन की
नयन कमलन की अनुहारी
है चितवन पाप-ताप हारी
लाल है पान, अजब मुसकान
श्रवन को अमरित बचनन की, करहु मन नख-दुति किरनन की

हृदय है दया क्षमा-भण्डार
करन सों करत अधम-उद्धार
दरस की आस, हरत भव-त्रास
नाव दृढ़ भव-निधि उतरन की, करहु मन नख-दुति किरननकी
नाभि ले जमुन-भँवर छवि-छीन

देख कटि-केहरि-छबि भइ हीन
लेत है पीर, बँधावत धीर
काम-गज मन-वन विहरन की, करहु मन नख-दुति किरननकी
चरन-नख अमरित-रस कर पान
होत भव-रोग नास, दुख खान
खुलेंगे नैन, मिले सुख-चैन
निरंतर गुरुजी के दर्शन की, करहु मन नख-दुति किरनन की
चरण - नख जोती लख लीजे
दयालु मो पै दया कीजे
चन्द्र नख-किरन, हृदय की फिरन
दया की भीख भिखारिन की, करहु मन-दुति-किरनन की।

रघुपति राघव राजाराम, पतित पावन सीताराम।
ईश्वर अल्ला तेरे नाम, सबको सन्मति दे भगवान ॥
रघुपति राघव राजाराम, पतित पावन सीताराम।
ईश्वर अल्ला तेरे नाम, सबको सन्मति दे भगवान ॥
रघुपति राघव राजाराम, पतित पावन सीताराम।
ईश्वर अल्ला तेरे नाम, सबको सन्मति दे भगवान ॥
श्री गुरुदेव, जय गुरुदेव, सदगुरुदेव, जय जय गुरुदेव।
श्री गुरुदेव, जय गुरुदेव, सदगुरुदेव, जय जय गुरुदेव।
श्री गुरुदेव, जय गुरुदेव, सदगुरुदेव, जय जय गुरुदेव।

बन्दहु गुरुपद पदुम परागा, सुरुचि सुवास सरस अनुरागा
श्रीगुरुपद नख मनिजन जोती, सुमिरत दिव्यदृष्टि हिय होती
गुरुपद-रज मृदु मंजुल अंजन, नयन अमिय दृगदोष विभंजन
मोरे तुम प्रभु गुरु पितमाता, जाउँ कहां तजपद जलजाता
गुरु के बचन प्रतीति न जेही, सपनेहु सुखमन सुख पीछे तेही
गुरुब्रह्मा गुरु विष्णु पुरारी, गुरु परब्रह्म दीन हितकारी।
बन्दहु गुरु पद बारहिंबारा, जासु कृपा छूटत संसारा ॥

सदगुरु भगवान की जय!
सदगुरु भगवान की जय!!
सदगुरु भगवान की जय!!!